# जज़िया तथा इस्लाम का प्रसार

हर्ष नारायण की पुस्तक “JIZYAH AND THE SPREAD OF ISLAM” का हिन्दी रूपांतर

रूपांतरकार: अष्टावक्र

संपादक: तुफ़ैल चतुर्वेदी

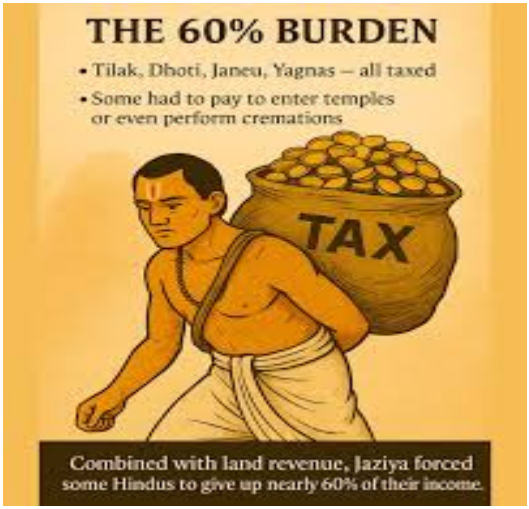

विषय सूची


| अध्याय संख्या | अध्याय का नाम | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1 | जज़िया की पृष्ठभूमि(Presuppositions of Jizyah) | 3 |
| 2 | जज़िया, इसका अनुयोजन तथा इसका प्रभाव(Jizyah and Its Associations-Implications) | 19 |
| 3 | भारत में जज़िया(Jizyah in India) | 76 |

# अध्याय-1

# जज़िया की पृष्ठभूमि(PRESUPPOSITIONS OF JIZYA)

जहां तक गैर-मुस्लिमों के प्रति दृष्टिकोण का प्रश्न है, मुसलमानों का मनोविज्ञान एक अनोखे साँचे में ढला है। रसूल अल्लाह के अनुसार, प्रत्येक शिशु जन्मजात मुस्लिम ही होता है, परंतु उसके माता-पिता उसे गैर-मुस्लिम बना देते हैं।(1) कुरान यह उद्घोषित करती है कि मुस्लिम समुदाय श्रेष्ठतम समाज है तथा उनका आविर्भाव मानवता के मार्गदर्शन(2) तथा धरती पर अल्लाह के प्रतिनिधि के रूप में शासन के निमित्त हुआ है(3) तथा इस्लाम अल्लाह द्वारा चयनित मज़हब है(4) जिसकी नियति में यह लिखा है कि यह अन्य मज़हबों पर विजयी होगा।(5) कुरान भी यह

कहती है कि “धरती अल्लाह के लिए है। वह जिस सेवक को चाहता है उसे यह विरासत में दे देता है।”(6) इस आधार पर पैगंबर ने निष्कर्ष में यह प्रमेय निकाला कि पूरी धरती अल्लाह की है अथवा उनकी है।(7) इसका स्वाभाविक उपप्रमेय यह निकाला कि सम्पूर्ण धरती अल्लाह तथा उसके रसूल के जरिए, मुसलमानों की संपत्ति है। स्पेन विजय के उपक्रम में, तारिक (तारिक इब्न ज़ायद) एक अरब सेना के साथ स्पेन की ओर के समुद्र तट पर उतरा तथा उसने उस जलयान को जला दिया जिसके साथ वह(समुद्र पार करके) आया था। सैनिकों की इस आपत्ति पर कि अब वे अपनी मातृभूमि कैसे लौटेंगे, तारिक ने अमर्ष में भर कर ‘इकबाल’ के शब्दों में यह कहा:

هر ملک ملک-ی ما'ست کی ملک-ی خدا-ی ما'ست

“हर मुल्क मुल्क-ए-मा अस्त कि मुल्क-ए-खुदा-मा अस्त”

अर्थात, ‘सम्पूर्ण धरती हमारी है, क्योंकि यह हमारे अल्लाह की है।’ यह सोच मुसलमानों को एक प्रकार का मान्य नैतिक अधिकार प्रदान करती है कि वे गैर-मुस्लिमों से जिहाद करके

उनकी जमीन हड़प लें। यथार्थ तो वह है जो 14वीं शताब्दी के मुस्लिम धर्मशास्त्री व न्यायविद इब्न तैमियाह ने स्पष्ट कर दिया कि जिहाद मुसलमानों को उनकी धरती वापस करने का यत्न मात्र है, जिनका इस पर एक प्रकार का दिव्य अधिकार है।

इसके अतिरिक्त कुरान मुस्लिमों से यह आग्रह करता है कि वे मूर्तिपूजकों को अशुद्ध(नजस) मानें तथा इस कारण उन्हें काबा के निकट नहीं आने दें।(8) अथवा अल्लाह की मस्जिद में न रहने दें, क्योंकि उनके कृत्य निरर्थक हैं तथा उनकी नियति अनंत काल तक जहन्नुम की आग में जलना है। (9) संभवतः यही कारण है कि रसूल अल्लाह ने मुस्लिमों को यह सीख दी कि वे काफिरों से इतने दूर रहें कि उनके(काफ़िरों की) घरों की रोशनी(चूल्हे की अग्नि) उनके(मुस्लिमों के) लिए अदृश्य रहे।(10) कुरान यह शिक्षा देता है कि मुस्लिम गुलाम एक मूर्तिपूजक से श्रेयस्कर है, चाहे मूर्तिपूजक मुसलमानों को कितना ही सज्जन प्रतीत हो रहा हो।(11)

क्या मूर्तिपूजक काया से, आस्था से अथवा दोनों से अशुद्ध

हैं? इमाम मलिक तथा हसन बसरी के अनुसार मूर्तिपूजक का शरीर अशुद्ध है, इसलिए जब मूर्तिपूजक अपना हाथ पानी में डालता है तो वह पानी अशुद्ध हो जाता है। इसके विपरीत, हनफ़ियों के अनुसार मूर्तिपूजक आस्था में भी अशुद्ध हैं तथा एक तीसरी इस्लामी विधिशास्त्र की शाखा है, जिसके प्रधान अनवर शाह कश्मीरी हैं, इनके अनुसार मूर्तिपूजक शरीर तथा आस्था दोनों में अशुद्ध हैं। उनका यह दावा है कि इमाम हनीफ़ाह भी उनके विचारों की पुष्टि करते हैं जब वह कहते हैं: 'यदि काफ़िर कुएं में गिर जाए तो कुएं का सारा पानी निकाल लेना चाहिए, चाहे उस काफ़िर को कुएं से जीवित निकाल लिया गया हो।'

कुरान की वे आयतें, जो मूर्तिपूजकों को अशुद्ध करार देती हैं, उन्हें काबा के निकट आने से रोकती हैं। प्रश्न यह है: क्या उनका अन्य मस्जिदों के निकट आना भी निषिद्ध है? इमाम मलिक का उत्तर इस विषय की पुष्टि करता है। काज़ी अबू बक्र इब्न अल-अरबी ने इसमें अपनी ओर से आगे जोड़ते हुए कहा कि यद्यपि आयत केवल काबा को संदर्भित करती है, परंतु वहाँ अशुद्ध(मूर्तिपूजकों के) होने का दिया गया आधार सामान्यतः अन्य मस्जिदों के संदर्भ में भी प्रावधित किया जा

सकता है।

9 हिजरी(लगभग 630-31 ईस्वी में , जब यह आयत अवतरित हुई) वर्ष तक मूर्तिपूजक मस्जिद के भीतर प्रवेश कर सकते थे तथा वहाँ रह सकते थे, परंतु पैगंबर के जीवन के शेष जीवन में ऐसा कोई दृष्टांत फिर नहीं मिलता।(12)

इस तथ्य को रेखांकित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि अयात अल्लाह खोमैनी के अनुसार, '11 वस्तुएं अशुद्ध हैं: मूत्र, मल, शुक्राणु, रक्त, श्वान, शूकर, अस्थि, गैर-मुस्लिम पुरुष तथा स्त्री, अंगूर की शराब, जौ की शराब, उस ऊंट की श्वास जो कचरा खाता है। गैर-मुस्लिम का पूरा शरीर ही अशुद्ध है, यहाँ तक कि उसके केश, नाखून तथा शरीर से निकलने वाले हर प्रकार के स्राव। वयस्क होने से पूर्व एक बालक अशुद्ध है यदि उसके माता-पिता तथा पितामह-मातामह गैर-मुस्लिम हैं।(13)

एक बार फिर, कुरान मुस्लिमों के लिए गैर-मुस्लिमों को मित्र बनाना(14) अथवा उनके सहायक बनना(15) निषिद्ध करता

है। यह मुस्लिमों का आह्वान करता है कि वे गैर-मुस्लिमों से युद्ध करें तथा उन्हें समाप्त करें ताकि इस्लाम, कुफ्र(अल्लाह व उसके रसूल में विश्वास न करना) से बेहतर सिद्ध हो(16) जहां कहीं भी अवसर मिले।(17) परंतु यह उनसे(मुस्लिमों से) यह भी आग्रह करता है वे उस स्थान से उत्प्रवास कर लें जहां पर उद्दंड काफ़िरों  का प्रभुत्व हो, (18) यदि ऐसा अनुभव करते हैं कि वे उनका(काफ़िरों का) किसी भी प्रकार से प्रतिरोध नहीं कर सकते।

सच तो यह है कि इस्लाम कहीं भी काफ़िरों के साथ मित्रवत सहअस्तित्व को न तो प्रोत्साहित करता है, न तो निर्दिष्ट करता है न ही ऐसा परिकल्पित करता है। कुरान के अनुसार काफ़िरों को सहन नहीं करना है, सम्मान की तो बात ही दूर है।

यह हास्यास्पद होगा, यदि हम कुरान के कुछ आरंभिक प्रावधानों का डंका बजायें जो अपने स्वर में कुछ विपरीत हैं। एक ऐसी आयत है: 'तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन तथा मेरे लिए मेरा दीन'(ला कुम दीनु-कुम वा लिया दीन) ।(19) एक अन्य है: 'दीन में कोई जबरदस्ती नहीं है।'( ला इकराहा

फि’द्दीन) ।(20) योग्य धर्मशास्त्र के टिप्पणीकारों के अनुसार, प्रथम आयत, रसूल अल्लाह की कुफ़्र के प्रति अनैच्छिक सहिष्णुता है, क्योंकि उनके पर इस समय पर्याप्त सामर्थ्य नहीं है कि वह उसे पराभूत कर सकें। जहां तक दूसरी आयत का प्रश्न है, शाह वली अल्लाह ने इसका यह अभिप्राय निकाला है कि इस्लाम का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के उपरांत बल प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय टिप्पणीकार यह दावा करते हैं कि ये आयतें तथा ऐसी अनेक आयतें, जिहाद की आयत आने के उपरांत रद्द हो गईं।(21) सच तो यह है कि एक प्रमुख शास्त्रीय टिप्पणीकार, अबू बक्र इब्न अल-अरबी यह दावा करते हैं कि इस आयत( जिहाद की आयत) ने पिछली 124 ऐसी आयतों को रद्द कर दिया जिनमें कुफ़्र के साथ सहिष्णुता दिखाने की बातें कही गईं थीं।(22) इसी प्रकार का प्रकरण उस सीख के साथ है जहां यह कहा गया है कि रसूल अल्लाह का कर्तव्य केवल अल्लाह के संदेश को सीधे-सीधे लोगों तक पहुंचा देना है न कि एक निरंकुश की भांति(23) अथवा एक सुरक्षा चौकीदार(हाफ़िज़)(24) की भांति लोगों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश करना है।

यथार्थ में, मुस्लिम मनोविज्ञान, काफ़िरों के साथ किसी भी प्रकार के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की संभावना को निरस्त कर देता है। हिदायाह के प्रसिद्ध लेखक अल-मार्घिनानी(Al-Marghinani) सही लगते हैं जब वह यह आग्रहपूर्वक कहते हैं कि काफ़िरों के साथ युद्ध ही शांति व सामान्य स्थिति है, यदि परिस्थितियाँ मुस्लिमों के नियंत्रण से बाहर हों।
वस्तुतः, जिहाद तोराह में भी नियत किया गया है, जिसका कुरान कहीं भी इनकार नहीं करता। मक्की कुरान अथवा मक्का में नाज़िल हुई कुरान में जिहाद की विचारधारा सुषुप्त है जो अपने वास्तविक रूप में मदनी कुरान में प्रकट होती है।

कुरान का अन्य धर्मों तथा समाजों के प्रति दृष्टिकोण निम्न सोपानों से होकर गुजरता प्रतीत होता है:

1. सभी सामी मजहबों के मध्य समान आदर का भाव तथा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व;
2. मूर्तिपूजक बहुदेववाद के प्रति भी अनिच्छा से सहिष्णुता यद्यपि कुछ दिनों के लिए ही;(25)
3. मदीना में, बनू औफ़ के यहूदियों के साथ मिलकर

मुस्लिमों द्वारा एक राष्ट्र की स्थापना(उम्माह वाहिदाह);(26)

4. रक्षात्मक जिहाद(पवित्र युद्ध);
5. आक्रामक जिहाद;
6. युद्ध-निषेध की सहमति के एवज़ में जज़िया उगाहना(जज़िया सुलहिय्याह);
7. विजित गैर-मुस्लिम समाज से जज़िया उगाहना।(जज़िया क़हरिय्याह);
8. जज़िया अदा करने वाले व्यक्तियों तथा समुदायों को अहल-अध-धिम्माह/धिम्मी(संरक्षित लोग) अर्थात, मुस्लिम राष्ट्र के गुलाम लोग;
9. सभी गैर-मुस्लिमों का अरब प्रायद्वीप से निष्कासन।

मुस्लिमों तथा काफ़िरों के संबंधों के विषय में, कुरान के आदेशों का सारभूत तत्व को, जो पैगंबर, उनके सहाबियों, अनुचरों ने तथा बाद में इस्लाम के ध्वजवाहकों तथा धर्मशास्त्रियों ने समझा, सिखाया तथा अमल में लाया, निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:

1. काफ़िर को इस्लाम धर्म में धर्मांतरित करने का प्रयास

करो;

2. यदि उनमें से कोई प्रतिरोध करे तो,

   I. इससे पूर्व कि अल्लाह उन्हें जहन्नुम की आग में झोंक दे, उन्हें कब्र में पहुंचा दो, उनकी चल व अचल(अल-अमवाल वा अल-अमलक) संपत्ति( को लूटो और नष्ट करो (अल-अनफ़ाल/अल-ग़नीमाह), उन्हें ग़ुलाम बनाओ: पुरुषों(उसारा), स्त्रियों तथा बच्चों(सबाया), सभी को;

   II. अथवा जहां पर जज़िया लगाने की अनुमति( अधिक अनुकूल) है, वहाँ काफ़िरों को मौत से बचने दो, परंतु उनके कुफ़्र के अपराध के शमन के लिए उन्हें अपमान के साथ जज़िया अदा करने दो, उन्हें इस्लाम के निर्मम बल के सम्मुख निम्न होकर समर्पण करने दो तथा उन्हें धिम्मी के लिए नियत हर प्रकार के निरादर तथा अवमानना की पीड़ा दो;

   III. अथवा एक बार फिर, यदि तुम काफ़िरों से उपरोक्त तरीके से निपटने में स्वयं को दुर्बल पाते हो तो उस स्थान से उत्प्रवास कर लोग

तथा उचित समय की प्रतीक्षा करो।

पैगंबर के कथनों तथा कृत्यों के आधार पर गंभीर धर्मशास्त्रियों ने जिहाद के चार प्रकार उद्धृत किये हैं: (27)

1. हृदय से जिहाद(जिहाद बी ए-कल्ब);
2. जिह्वा से जिहाद(जिहाद बी ए-लिसान);
3. हाथों से जिहाद(जिहाद बी ए-याद);
4. तलवार से जिहाद(जिहाद बी ए-सैफ़)।

कौन सा जिहाद अपनाना है यह उस विशेष परिस्थिति पर निर्भर करता है जिसमें मुसलमान स्वयं को पाता है।

जिहाद परोक्ष रूप से नरसंहार ही है, परंतु कुछ अंतर के साथ तथा यह अंतर जज़िया के कारण है जो हम आगे पाठन के क्रम में देखेंगे।

फुटनोट

1. बुखारी,खंड-1, किताब अल-जनैज़, हदीस.1295;

2. अल इमरान(3), 110;
3. अन-नूर(24) 55; अन-नामी(27) 62;
4. अल-इमरान(3) 19, 85; अल-मैदाह(5) 3;
5. अत-तौबाह(9) 33; अल-फ़तह(48) 28; अस-सैफ़(61) 9;
6. "इन्ना 'ई-अरदा लि-ल्लाह; यूरिथु-हा मान ययशाऊ मिन 'इबादी-ही" अल-आराफ़(7) 128;
7. "आ इआमू अन्न अल-अरदा लि-ल्लाह-ए वा रसूल-इहि", बुखारी खंड-2, किताब अल-जिहाद वा अस-सियार, हदीस-406.
8. अत-तौबाह((9) 28;
9. अत-तौबाह((9) 17;
10. शाह वली अल्लाह, हुज्जाह अल्लाह अल-बालिग़ाह, खंड-2, उनवान अल-हुदूद(50) कराची, एन. डी. पृष्ठ-468;
11. अल-बकराह(2) 221;
12. 'अशुद्ध' की विचारधारा पर गहन विमर्श के लिए अनवर शाह कश्मीरी की कृति, 'फ़ैद अल-बारी(बुखारी पर आधृत) खंड-1, पृष्ठ-361-63 देखें;
13. बात येओर(Bat Ye'or), 'धिम्मी(The

Dhimmi)' का डेविड मसेल, पॉल फेंटन तथा डेविड लिटमैन(David Masel,Paul Fenton, & David Littman) द्वारा किया गया अनुवाद(rev. & enl. English ed., Rutherford:Madison: Teaneck: Fairleigh: Dickinson University Press; London & Toronto: Associated University Press, 1985), पृष्ठ 396-97 देखें;

14. अल-इमरान(3) 28,118 ; अन-निसा(4) 144; अल-मैदाह(5) 51,54,57,80; अत-तौबाह(9) 16,23;
15. अल-कसास(28) 86;
16. अल-बकराह (2) 193; अल-अनफ़ाल(8) 39; अत-तौबाह (9) 5;
17. अल-तौबाह (9) 5;
18. अल-अनफ़ाल(8) 72-75; अत-तौबाह(9) 20;
19. अल-काफ़िरून(109) 6;
20. अल-बकराह(2) 156;
21. जिहाद की आयत: अत-तौबाह (9) 5;

22. जलालुद्दीन अस सुयूती, अल-इत्तिकान फ़ी उलुम अल-कुरान, खंड-2, मुहम्मद हलीम अंसारी दौलवी द्वारा उर्दू में अनूदित(फ़िरोज़पुर: फ़ैज़ बक्श स्टीम प्रेस, 1908), नौ(अध्याय) 47, 61-62;

23. सुराह काफ़(50) 45;

24. अल-अनाम(6) 108;

25. उन आयतों को याद करें जो काबा की मूर्तियों की प्रशंसा में उतरीं थीं, जिन्हें बाद में रसूल अल्लाह द्वारा शैतानी आयतें बताकर रद्द कर दिया गया था। यह कहा जाता है कि जब पैगंबर कुरैशियों का मन मोहने की चेष्टा कर रहे थे तभी उन्हें एक इल्हाम हुआ तथा उन्होंने एक पूरी सुराह ही काबा की परमपूज्य देवियों(मूर्तियों) के ऊपर रच डाली ताकि कुरैशियों से मित्रता की जा सके। इस घटना की सूचना पाते ही उनके वह अनुचर, जो इथियोपिया विस्थापित हो गए, वापस आ गए। परंतु यह आशा की किरण अल्पकालिक रही। यद्यपि रसूल अल्लाह ने शीघ्र ही इन आयतों को यह कह कर वापस ले लिया कि इन्हें शैतान ने उनके मुंह में डाल दिया था। तथापि, इब्न मसूद के अतिरिक्त और कोई

भी इथियोपिया वापस नहीं गया तथा सभी प्रवासी वापस मक्का में बस गए। मुहम्मद इब्न साद(इब्न साद के नाम से प्रसिद्ध) द्वारा लिखित किताब अल-वाक़िदी तथा किताब अत-तबक़ात अथवा तबक़ात इब्न साद देखें; अब्दुल इलाहू इमादी द्वारा किया गया इसका उर्दू अनुवाद, खंड-1, हैदराबाद, 1944, पृष्ठ 308-11 देखें। यह कुरान की सूराह अल-हज्ज(22) की आयत 52 की भूमिका है, जिसमें लिखा गया है: 'हमने कभी भी किसी रसूल अथवा पैगंबर को तुमसे पूर्व नहीं भेजा परंतु जब उसने शैतान का प्रस्तावित संदेश पढ़ा, तब अल्लाह ने शैतान की प्रस्तावित आयत को निरस्त कर दिया। अल्लाह ज्ञानी तथा बुद्धिमान है।

26. इब्न हिशाम की सिराह सैय्यदा-ना मुहम्मद जिसका उर्दू अनुवाद अब्दुल जलील सिद्दीकी तथा ग़ुलाम रसूल मिहर ने सीरत उन-नबी-ए-कामिल के शीर्षक से 1982 में किया है, इसके खंड-1 का पृष्ठ 554 देखें।

27. दृष्टांत के लिए देखें, अबू मुहम्मद बिन हज़्म अल-उंडुलसी, जिन्हें सामान्यतः इब्न हज़्म के नाम से जाना

जाता है, किताब अल-फ़स्ल फ़ी अल-मिलाल वा अल-अहवा वा अन-निहाल, काहिरा, 1321 हिजरी, खंड-4, पृष्ठः 135.

# अध्याय-2

# जज़िया, इसका अनुयोजन तथा इसका प्रभाव(JIZYAH AND ITS ASSOCIATIONS-IMPLICATIONS)

इस्लाम के प्रसार में जज़िया की भूमिका पर बहुत कम शोध कार्य हुआ है अथवा स्वयं जज़िया पर भी बहुत काम कार्य हुआ है। हमें इस संबंध में केवल एक विनिबंध के विषय मे पता है जो डैनियल सी. डेनेट(1) ने लिखा था। शिबली नोमानी(मृत-1916) द्वारा लिखा गया एक आलेख, 'अल-जज़िया' अबुल कलाम आज़ाद द्वारा यह कह कर सराहा गया कि यह आधुनिक युग में इस्लामी अध्ययन की दृष्टि से एक प्रमुख उपलब्धि है।

शिबली, डेनेट तथा अन्य लोग इस व्यंजक का तथा जज़िया की विचारधारा का उत्स इब्रानी भाषा(अरबी, हिब्रू व सिरियाक भाषाओं की जननी भाषा) के 'जिजित/जिजयात' में ढूंढते हैं,(शिबली-2) अथवा 'गजीठा(Gzitha)' में ढूंढते हैं जो ईरान के ससानी बादशाह खुसरव अनुशिरवान(531-79 ईस्वी) के समय से पूर्व प्रचलन में था। यह एक प्रकार का प्रतिव्यक्ति कर था अथवा प्रतिव्यक्ति जुर्माना जैसी वस्तु थी, जिसका भुगतान एक प्रकार के अपमान का प्रतीक था तथा सामाजिक हीनता का परिचायक था। अतएव सुविधाभोगी वर्ग, जैसे राजनयिक, सैनिक, पुरोहित व शिक्षित अभिजात्य वर्ग को इससे छूट थी।(3) बैजनतिया शासन में जज़िया का एक अलग ही रूप था, इसे 290 ईस्वी से पहले 'ट्रिब्यूटम कैपिटिस (tributum capitis)' कहते थे। राजा कोंसटेंटाइन(Constantine: 274-337 ईस्वी) ने नगरीय आबादी को इससे मुक्त कर दिया। चौथी शताब्दी के उपरांत यह व्यक्तिगत कर एक ऐसा बोझ बन गया जिसे उपनिवेशों पर लगाया जाता था। इस प्रकार वहाँ के समाज के साथ इसकी पहचान बन गई तथा इस कर के साथ 'अपमान' की मुहर भी लग गई, क्योंकि इसका नामकरण "जनता को अपमानित करके उनसे लिया जाने वाला कर(a

plebeiae capitationis injuria)" इसके निहितार्थ को स्पष्ट कर देता है।(4) हम यह देखेंगे कि कुरान में प्रस्तावित जज़िया का भुगतान भी अपने साथ अपमान की छाप लिए हुए है।

कुरान 631 ईस्वी में जिहाद की आयत का उल्लेख करता है, अर्थात रसूल अल्लाह द्वारा 630 ईस्वी में मक्का विजय के लगभग एक वर्ष बाद। उद्देश्य यह था कि इस्लाम स्वीकार नहीं करने की सज़ा के तौर पर जज़िया लिया जाए। हम इस आयत को उसके पूर्ण मौलिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं:

قَٰتِلُواْ ٱلَّذِينَ لَا يُؤۡمِنُونَ بِٱللَّهِ وَلَا بِٱلۡيَوۡمِ ٱلۡأٓخِرِ وَلَا يُحَرِّمُونَ مَا حَرَّمَ ٱللَّهُ وَرَسُولُهُۥ وَلَا يَدِينُونَ دِينَ ٱلۡحَقِّ مِنَ ٱلَّذِينَ أُوتُواْ ٱلۡكِتَٰبَ حَتَّىٰ يُعۡطُواْ ٱلۡجِزۡيَةَ عَن يَدٖ وَهُمۡ صَٰغِرُونَ

(5)

मोहम्मद मार्माड्यूक पिकथॉल ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है: ‘ऐसे लोगों से युद्ध करो, जिन्हें किताब( मजहबी किताब) दी गई थी परंतु जिन्होंने अल्लाह पर विश्वास नहीं किया, न तो कयामत के दिन पर विश्वास किया तथा उस

वस्तु को निषिद्ध नहीं किया जिसे अल्लाह ने अपने रसूल के माध्यम से निषिद्ध किया था तथा सच्चाई के मजहब का अनुसरण नहीं किया, जब तक कि वे अपमानित होकर जज़िया अदा करने के लिए तैयार न हो जाएं।' मुस्लिम अथवा गैर-मुस्लिम द्वारा इस आयत का कमोबेश यही अनुवाद है। आयत का यह अनुवाद धर्मांतरण अथवा मृत्यु के विकल्प के रूप में जज़िया अदा करने का संकेत करता है, यह मार्ग केवल किताब वाले मजहबों के लिए खुला है तथा कुरान केवल दो ही पंथिक समुदायों को मान्यता देता है(ताइफ़ातैंन) , अर्थात यहूदी तथा ईसाई जो किताब वाले हैं।(6) इस्लाम के चार महान न्यायशास्त्रियों में से एक, इमाम शफ़ी माग़ी(पारसी) लोगों को भी किताब वालों में शामिल करते हैं; इसका आधार यह है कि पैगंबर ने बहरीन, क़तर, कातीफ़, तथा उम्मान की माग़ी जनता से जज़िया वसूल किया था। दूसरे खलीफा उमर ने यही व्यवहार ईरान के माग़ी तथा मेसोपोटामिया के सबाइन धर्मावलंबियों के साथ किया था। उस्मान(तीसरे खलीफा) ने यही कार्य उत्तरी अफ्रीका स्थित ट्यूनीशिया, अल्जीरिया तथा मोरक्को की बर्बर जातियों के साथ तथा खलीफ़ा अब्द अल-मलिक के राज्यपाल हज्जाज इब्न यूसुफ के अधीनस्थ मुहम्मद

बिन कासिम ने यही बर्ताव सिंध के हिन्दू तथा बौद्धों के साथ किया था। चार महान न्यायशास्त्रियों में से एक अन्य इमाम मलिक के अनुसार जज़िया की आयत सभी गैर-मुस्लिमों पर लागू है, सिवाय इस्लाम त्यागने वालों के(मुरतद)। चार में से तीसरे महान न्यायविद इमाम अबू हनीफ़ा के अनुसार यह सिवाय अरब के मूर्तिपूजकों के अन्य सभी पर लागू है। जज़िया अदा नहीं करने वालों के लिए नियमानुसार मृत्यु है।

जज़िया की इस आयत पर हमारी समझ पूर्णरूपेण भिन्न है। हम यह इस निष्कर्ष पर विश्वास रखते हैं कि जज़िया अदा करने के द्वार किताब वालों(ईसाई, सबाइन तथा यहूदी) तथा बिना किताब वालों(अन्य धर्म), दोनों प्रकार के समुदायों के लिए खुले थे। आइए इस आयत का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं।

संदर्भित आयत गैर-मुस्लिमों के प्रति निम्न दो प्रकार के जिहाद का आदेश देती है:

1. उन लोगों के विरुद्ध जो अल्लाह तथा अल्लाह व

उसके रसूल द्वारा निर्दिष्ट कयामत के दिन तथा हराम-हलाल में आस्था नहीं रखते;

2. किताब वाले वे लोग जो इस्लाम कुबूल नहीं करते।

प्रथम प्रकार में संदर्भित वर्ग के लोग किताब वाले नहीं हो सकते, इसका सीधा कारण यह है कि सभी किताब वाले अल्लाह(अथवा एकेश्वरवाद वाले ईश्वर यथा जेहोवा अथवा अल्लाह), कयामत के दिन तथा हलाल-हराम में विश्वास करते हैं। अतएव केवल बिना किताब वाले ही इस वर्ग में आ सकते हैं। यही कारण है कि हम यह मानते हैं कि यह आयत दोनों प्रकार के गैर-मुस्लिमों पर लागू होती है। इस आधार पर हम इस आयत का अनुवाद इस प्रकार करते हैं: 'उन लोगों के विरुद्ध युद्ध करो जो न तो अल्लाह में, न कयामत के दिन में, न अल्लाह तथा उसके रसूल द्वारा निषिद्ध की गई वस्तु में विश्वास करते हैं तथा ऐसे लोगों के विरुद्ध युद्ध करो जिन्हें किताब दी गई परंतु फिर भी सच्चाई के मजहब(इस्लाम) को नहीं मानते, जब तक कि वे अपने हाथों से अपमानित होकर जज़िया अदा न करने लगें।(7) यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि यह आयत सूराह तौबाह/अल

बाराह(सुराह 9) से संबंधित है जो बड़े हज( हज अल-अकबर) की पूर्व संध्या पर अवतरित हुई थी।(8)इसका किसी अन्य की अपेक्षा मूर्तिपूजकों से सर्वाधिक संबंध है।(9) क्योंकि इसी समय के बाद से जाहिल्या(बहुदेववाद) की रीतियों का स्थान इस्लाम ने ले लिया। यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि संयोगवश, 623 ईस्वी के आस-पास घटित मक्का की संधि जो उपरोक्त संदर्भित आयत से लगभग 8 वर्ष पूर्व बनू औस तथा बनू खजराज जातियों के मध्य सम्पन्न हुई, जो यहूदियों पर भी लागू थी; यहाँ जज़िया अथवा अन्य किसी भी प्रकार की कठिन शर्त नहीं लगाई गई थी, सिवाय इस शर्त के कि यदि वे मुस्लिमों द्वारा काफ़िरों के विरुद्ध छेड़े गए युद्ध में मुस्लिमों की ओर से प्रतिभागी होते हैं तो उन्हें इस संयुक्त प्रयास के लिए किये गए खर्च में भी साझेदारी करनी होगी।

जज़िया की आयत का बल तथा इसके निहितार्थ, जो समय के साथ कूटबद्ध किये गए, निम्न महत्वपूर्ण बिंदुओं पर संकेंद्रित होते हैं।

1. जज़िया मूलतः एक जिहादी कर है, यह कोई राजस्व

नहीं है, जैसे इसे दिखाने का प्रयास किया जाता है।

2. जहां तक जज़िया के लिए लक्षित समुदाय का प्रश्न है, इस विषय में किताब वाले तथा बिना किताब वाले, दोनों की एक ही नियति है, सिवाय एक अपवाद के कि परंपरानुसार पैगंबर ने अपनी मृत्युशैय्या पर यह अभिलाषा प्रकट की तथा तदनुसार आदेश दिया कि अरब में एक भी गैर-मुस्लिम नहीं होना चाहिए।(10) इस प्रकार गैर-मुस्लिमों के लिए जज़िया देकर जीवित रहने की छूट वापस ले ली गई।(अरब देश के लिए)

3. यह पूर्वकल्पित है कि इस्लाम का अन्य समुदायों पर प्रभुत्व रहेगा।

4. यह इन सिद्धांतों को पहले से ही मान के चलता है

    I. कि विश्व केवल मुस्लिमों के लिए है, मुस्लिमों का है तथा इसमें काफ़िर का कोई स्थान नहीं है तथा

II. जिहाद में जिन समुदायों को मुस्लिम जीतते हैं, उनके धन तथा जीवन पर पूर्णरूपेण मुस्लिमों का अधिकार है, जो अपनी इच्छानुसार उन्हें लूट सकते हैं, गुलाम बना सकते हैं अथवा कत्ल कर सकते हैं;(11)

5. इस्लामी शासन का जज़िया अदा करने वाले व्यक्तियों अथवा समुदायों अर्थात धिम्मियों के प्रति कोई भी उत्तरदायित्व नहीं है, सिवाय इसके कि उनका उन्मूलन नहीं किया जाए तथा उन्हें न्यूनतम आवश्यकताओं तक सीमित रखा जाए जैसे काठ चीरने वाले तथा पानी भरने वाले। धिम्मी के रूप में रहना एक प्रकार से फिरौती(जज़िया तथा संबंधित कर) देकर जिंदा रहने जैसा है।

6. कुरान में जज़िया लागू करने के उद्देश्य के विषय में भिन्न प्रकार के सिद्धांत प्रतिपादित किये गए हैं, दृष्टांत के लिए:

I. संतुष्टि(जज़ा=उसने संतुष्टि दी)

II. मुआवज़ा,

III. आवास कर अथवा किराया,

IV. सुरक्षा कर(अमन),

V. सैन्य सेवा के एवज़ में भुगतान,

VI. धर्मपालन करने पर कर,

VII. अविश्वास(अल्लाह पर) की सज़ा,

VIII. अंधकार में पड़े रहने की जिद के लिए अपमान अथवा प्रतिद्वंदी आस्था के प्रति घृणा तथा किसी अन्य उद्देश्य के लिए लिया जाने वाला धन,

IX. दूसरों की कीमत पर शक्ति तथा संपत्ति अर्जित करना, जिसमें अन्य बाध्यताओं के साथ दूसरों को निरीह कर देना भी शामिल था, जो मध्ययुग में सल्तनत के अधीनस्थ सामान्य अमल हुआ करता था। इस प्रकार जज़िया लागू किया जाना, शोषण की एक व्यवस्था थी।

सीधे शब्दों में कहा जाए तो हम जज़िया लागू करने के निम्न

मुख्य उद्देश्य रेखांकित कर सकते हैं:

1. यह लूट, ग़ुलामी, फिरौती, बलात धर्मपरिवर्तन का एक विकल्प होने के साथ-साथ कुफ़्र का दंड है। इस कारण इसे एक प्रकार का जुर्माना अथवा निजी आस्था में आसक्ति के कारण लगाया जाने वाला कर भी कहा जा सकता है। इसे एक प्रकार का वित्तीय जिहाद भी कहा जा सकता है।
2. यह इस्लामी राज्य में गैर-मुस्लिम होने के नाते मिलने वाला अपमान का एक बिल्ला है जो अतिशय ग़ुलामी का प्रतीक है। अल्लाह की इच्छा के प्रति पूर्व समर्पण ही इस्लाम का अभिप्राय है तथा जज़िया अदा करने की बाध्यता, इस्लामी राज्य की इच्छा के प्रति निरीह समर्पण है। जज़िया का परिमाण अधिक अर्थ नहीं रखता। इस संदर्भ में फ़ारसी के महान कवि बेदिल के शब्द स्मरणीय हैं।

“علاج-ی نیست داغ-ی بندگی را
اگر بشم و گر کم آفریدند”

(ईलाज-ए नेस्त  दाग़-ए-बंदगी रा; अगर बेशम वा गर कम अफरीदँद।)

अर्थात, 'ग़ुलामी के दाग़ का कोई इलाज नहीं है; इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि यह कम है अथवा अधिक है।'

3. इसके पीछे एक दीर्घकालीन नीति यह प्रतीत होती है कि धिम्मी को धीरे-धीरे विवश किया जाए तथा प्रेरित किया जाए कि वह इस्लाम की ओर आए तथा इसे कुबूल कर ले। उन्हें इस आशा में जीवित रहने दिया जाए कि समय के साथ वे इस्लाम कुबूल कर लेंगे। इस प्रकार से यह एक ढँका-छुपा हुआ दबाव का एक पूरा तंत्र है।
4. यह धिम्मियों  के लिए अन्य प्रकार के अपमानजनक करों के द्वार भी खोल देता है, जैसे उदाहरण के लिए तीर्थयात्रा कर जो उन पर धार्मिक उत्सवों को मनाने की छूट के एवज़ में लगाया जाता था इत्यादि। यह काफ़िरों  के साथ विनिमय के सिलसिले में भूमि-कर अथवा खराज की भी पूर्व-भूमिका भी थी।

यहाँ हम मुजाद्दिद-ए-अल्फ़-ए-थानी को जज़िया के विषय पर संदर्भित करना चाहेंगे, जो दूसरी सहस्त्राब्दी में, जहांगीर के शासन के समय इस्लाम के पुनर्जागरण के पुरोधा थे: ‘ काफ़िरों पर जज़िया लागू करने का वास्तविक उद्देश्य उनका अपमान करना है। यह अपमान इस स्तर तक होना चाहिए कि जज़िया के भय से वे न तो अच्छी वेशभूषा धारण कर सकें, न ही सम्मान अथवा समृद्धि के साथ रह सकें तथा सदैव भय के कारण कांपते हुए जीवन व्यतीत करें।’

و مقصد-ی اصلی از
جزیه گرفتن از ایشان خاری-ی ایشان است
و این خاری با-هد-ی
ست کی از ترس-ی جزیه جامه-ی خوب نه می-توانند '
پوشید

و
با-تجممول نه می-توانند بود, و همیشه ترسان و
لرزان می-باشند

(वा मक़सूद-ए-असली अज़ जजिया गिरिफ़्तान अज़ ईशान खरी-ए ईशान अस्त। वा इन खरी बा-हद्द-ए
'स्ट कि अज़ तरस-ए जजिया जमह-ए ख़ुब न मि-तवानंद पोशीद, वा ब-तजम्मुल न मि-तवानंद बूद, वा हमीशाह तरसान वा लार्ज़ाएन मि-बाशांद) (12)

यथार्थ में जज़िया लागू करना एक लंबी प्रक्रिया है जो धर्मपरिवर्तन के निमित्त एक प्रकार का नियंत्रित बल-प्रयोग है।

यह तो सिद्धांत की बात हो गई, आइए इतिहास पर दृष्टि डालें।

किस प्रकार जज़िया का अमल शुरू हुआ? यह यमन के नाजरान जिले से आरंभ हुआ जो अरब प्रायद्वीप में ईसाई धर्म का तथा सभ्यता का सबसे बड़ा केंद्र था। मक्का के कुरैश जाति के मिथ्या-अभिमान से भी, जिसकी पहचान उनके इस्लामीकरण के पश्चात तथा उनके पैगंबर से संबंधित होने के कारण ही हुई, बहुत पहले ही नजरानी लोग, कवियों समेत

अरब की समस्त जनता द्वारा, सर्वाधिक समृद्ध तथा सर्वश्रेष्ठ आचरण वाले माने जाते थे। अरब की सबसे बड़ी शक्ति के रूप में उभरने के बाद, पैगंबर ने धर्म प्रचारकों के दल दूर-दूर तक भेजे ताकि इस्लाम का विस्तार हो सके। जब ऐसा एक दल 629 ईस्वी में नाजरान पहुंचा तो वहाँ के ईसाइयों ने कुरान की प्रामाणिकता तथा वैधता पर प्रश्न खड़े कर दिए; इस परिस्थिति की कल्पना इस्लाम के अशिक्षित प्रचारकों ने नहीं की थी। ईसाइयों ने जीसस की माँ मेरी के संबंध में कुरान की त्रुटियों(13) की ओर ध्यानाकृष्ट किया, जिसे कुरान ने मूसा व हारून की बहन के रूप में दर्शाया था। इस्लामी प्रचारक दल के नेता मुग़ीरा बिन शुबाह इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ रहा तथा इस विषय की सूचना पैगंबर को दी। पैगंबर ने ईसाइयों को बुलाया। उनके प्रतिनिधिमंडल ने वहाँ जाने का निर्णय लिया, परंतु उनके मन में भय था, उनके होंठों पर निम्न छंद थे: 'हम उनके निकट इस प्रकार पहुँच रहे हैं कि हमरी ऊँटनियों के गर्भस्थ शिशु भी विकल हो रहे हैं। उनका धर्म ईसाई धर्म के विरुद्ध है।'(14) जब वे पैगंबर के निकट पहुंचे तो उन्होंने अपना मुख दूसरी ओर कर लिया तथा उनसे बात नहीं की। अगले दिन सुबह उन्होंने उन्हें इस्लाम स्वीकार करने की दावत दी, जो उन्होंने

अस्वीकार कर दी। उनके तथा ईसाइयों के मध्य एक प्रकार की प्रतीकात्मक बहस हुई। पैगंबर ने जीसस क्राइस्ट के उस दावे की आलोचना की जहां वे स्वयं को ईश्वर का पुत्र कहते हैं। इस पर ईसाइयों ने कहा कि उनके विचार में फिर जीसस का पिता कौन है। पैगंबर इसका उत्तर नहीं दे सके। कुछ समय पश्चात एक आयत उन पर उतरी जिसमें यह कहा गया कि जीसस का जन्म आदम के जन्म जैसा ही था।(15) जब ईसाइयों ने मेरी(जीसस की माँ, जिसे रसूल अल्लाह ने हारून तथा मूसा की बहन बताया था) के संबंध में प्रश्न पूछे तो पैगंबर ने इससे अधिक कुछ नहीं कहा कि इस्राइल के निवासी कभी-कभी अपने सदस्यों के नाम अपने पूर्वजों के नाम पर रखते हैं।(16) जब पैगंबर उन्हें संतुष्ट करने में असमर्थ रहे तो उन्होंने उन्हें चुनौती दी कि वे इस विवाद को कुरान द्वारा समर्थित पुरातन अरब अंदाज में सुलझा लें जहां पारस्परिक लानत देने का रिवाज है(मुबाहला)।(17) ईसाइयों ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया तथा विवाद से अपने हाथ खींच लिए, क्योंकि न्यू टेस्टामेंट लानत देने की अनुमति नहीं देता। तब पैगंबर ने बल देकर उनसे इस्लाम स्वीकार करने के लिए आग्रह किया तथा उनकी अस्वीकृति पर उन्हें पैगंबर का प्रभुत्व स्वीकार करने तथा जज़िया अदा करने का

आदेश दिया। वे पैगंबर की प्रजा बन गए तथा उन पर बलात जज़िया थोप दिया गया।

रसूल अल्लाह तथा नाजरान निवासियों के मध्य हुई संधि ने किताब वालों(यहूदी व ईसाई) के साथ भविष्य होने वाली संधियों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसके अनुसार नाजरान निवासियों को एक सुरक्षित जीवन,संपत्ति तथा धार्मिक स्वतंत्रता का आनंद तब तक प्राप्त होगा, जब तक अल्लाह इसके विरुद्ध कोई आदेश न दे दे, इसके एवज़ में वार्षिक जज़िया के रूप में एक विशिष्ट मूल्य वाले 2000 वस्त्र(हुल्लाह) तथा हर वस्त्र के साथ एक उकीय्याह(40 दिरहम अथवा एक पौंड) चांदी तथा साथ ही रसूल के दूतों के लिए एक माह तक का आतिथ्य करना होगा। इसके अतिरिक्त यह भी शर्त थी कि नाजरान वासियों को अल-यमन से युद्ध की स्थिति में 30 कवच तथा 30 ऊंट भी देने होंगे तथा सूद से बचना होगा।(18)

प्रथम खलीफा अबू बक्र ने इस संधि की मर्यादा बनाए रखी, परंतु दूसरे खलीफ़ा उमर(उमर इब्न अल खत्ताब जिनका शासन काल 634-44 ईस्वी तक रहा) ने इस संधि की उस

धारा का लाभ उठाया जहां यह कहा गया था कि यह संधि तब तक वैध है जब तक अल्लाह इससे हट कर कुछ आदेश नहीं देता है तथा अल्लाह के रसूल की अपनी अंतिम अभिलाषा अरब से गैर- मुस्लिमों को बाहर करने की थी अतएव सारे नाजरान निवासियों की संपत्ति खरीदने तथा उन्हें निर्वासित करने की योजना बनाई गई। उमर ने उन्हें एक लिखित राजाज्ञा दी जिसकी सहायता से उन्हें सीरिया तथा इराक में रहने के लिए घर तथा खेती के लिए भूमि मिल सके। इसके पश्चात उन्हें बहिष्कृत होकर सीरिया तथा कूफ़ाह मे शरण लेनी थी। कूफ़ाह(इराक) में उन्होंने एक नगर बसाया जिसका नाम अन-नाजरानिय्याह रखा। जब तीसरा खलीफ़ा उस्मान सत्ता में आया तो उसके सम्मुख यह याचिका दी गई कि उमर की राजाज्ञा ने मूल भूस्वामियों को उनकी भूमि से वंचित कर दिया गया है। अतएव उसने जज़िया को 200 वस्त्र कम कर दिया।(क्योंकि नवीन धरती में इतनी आय नहीं हो सकती थी) नाजरान के ईसाइयों ने अनिर्वचनीय वेदना से आहत होकर फिर चौथे खलीफ़ा अली के सम्मुख निवेदन किया कि उन्हें उस पुरानी संधि के अनुसार नाजरान वापस जाने दिया जाए, जिसे रसूल अल्लाह के कहने पर अली ने ही लिपिबद्ध किया था। परंतु इसका कोई प्रभाव

नहीं पड़ा। तत्पश्चात नाजरान वासियों ने पाँचवे तथा छठे खलीफ़ा से विनती की जिसने उनका जज़िया कर और 200 वस्त्र कम कर दिया। बाद में इराक के राज्यपाल हज्जाज बिन यूसुफ़ ने उनके ऊपर भीषण अत्याचार किये तथा उनके ऊपर जज़िया इतना अधिक बढ़ा दिया कि यह उनकी सहनशक्ति से बाहर हो गया। जब उमर इब्न अब्द अल-अज़ीज़ खलीफ़ा(717-720 ईस्वी) बना तो उससे भी नाजरानी ईसाइयों ने गुहार लगाई कि वे पूरी तरह से बर्बाद हो चुके हैं तथा उनकी जनसंख्या पूर्व की केवल दशांश रह गई है। खलीफ़ा ने उनके जज़िया कर को घटाकर केवल 200 वस्त्रों तक सीमित कर दिया।(19)

संक्षेप में अरब प्रायद्वीप की सर्वश्रेष्ठ सभ्यता की गाथा है जिसे उस धर्म द्वारा अपनी धरती से सदा के लिए उखाड़ फेंका गया जिसे शांति का धर्म कह कर प्रस्तुत किया जाता है।

इस्लाम के पूरे इतिहास में जज़िया, धर्म परिवर्तन का उत्प्रेरक रहा है। इसके अतिरिक्त, चाहे आप विश्वास करें अथवा नहीं, कभी-कभी धर्म परिवर्तन की राह में यह एक बड़ी रुकावट भी रहा है। लोभी शासकों के हाथ में यह शोषण  का एक

ऐसा यंत्र बन गया कि कभी-कभी यह अरब के बाहर नव-मुस्लिमों पर भी लगाया जाने लगा। उमय्यद शासन(660 से 750 ईस्वी) के दौरान यह सामान्य चलन हो गया। यह उमय्यद खलीफ़ा उमर बिन अब्द अल-अज़ीज़( मृत 720 ईस्वी) था, जिसने इसे पूरी तरह बंद कर दिया। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय बाद ही हिशाम बिन अब्द अल-मलिक के शासन के समय यह रोग एक बार फिर उभर का सामने आ गया। उसके एक राज्यपाल ने नव-मुस्लिमों को जज़िया अदा करने की बाध्यता से मुक्त कर दिया, परंतु इसे एक बार फिर उस समय लगाना पड़ा जब यह बात सामने आई कि इसे समाप्त करने से राजकीय राजस्व को हानि हो रही है। द्वितीय खलीफ़ा उमर ने बनू तग़लिब के अरब जाति के ईसाइयों पर दोहरा ज़कात लगाया, यह एक विसंगति थी, क्योंकि कुरान के अनुसार ज़कात केवल मुस्लिमों पर लगाया जाने वाला कर था। इससे अनेकों धार्मिक तथा राजनैतिक जटिलताएं उत्पन्न हो गईं। तब खलीफ़ा ने उन पर जज़िया लगाना प्रस्तावित किया, परंतु उन्होंने इसे अपने स्वाभिमान के विरुद्ध माना कि उन्हें जज़िया अदा करने के लिए बाध्य किया जाए तथा उन्होंने दार अल-इस्लाम से उत्प्रवास करने की धमकी दी। इस पर उमर को

यह सुझाव दिया गया कि वह इस अत्यंत युद्धप्रिय जाति से शत्रुता मत करे तथा इस प्रकार उमर ने उनसे केवल ज़कात ही लिया न कि जज़िया। इस जाति ने इसे जज़िया के स्थान पर पसंद किया।(20)

जज़िया धर्मपरिवर्तन के लिए विवश करने के निमित्त भिन्न परिमाण में एक बल के रूप में निरंतर प्रयुक्त हुआ है। उमय्यद परिवार के विद्रोह का लाभ उठाकर मिस्र के अपदस्थ राज्यपाल ने अपनी सत्ता पुनर्स्थापित कर ली तथा 744 ईस्वी में यह मुनादी पिटवा दी कि जो कोई भी इस्लाम धर्म स्वीकार करेगा उसे जज़िया से मुक्त कर दिया जाएगा; इस आह्वान पर 24 हज़ार ईसाइयों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। यही प्रकरण मिस्र के अब्बासी राज्यपाल ने 751 ईस्वी में दोहराया।(21)

कभी-कभी जज़िया की बंदूक ठीक निशाने पर नहीं बैठी। हमने यह देखा कि किस प्रकार बनू तग़लिब ने दोहरा ज़कात स्वीकार कर लिया, परंतु अपमानजनक जज़िया को ठुकरा दिया। जबालाह नामक एक ईसाई ने ज़कात अदा करना

स्वीकार किया, परंतु जज़िया ठुकरा दिया। उमर(उमर इब्न अल खत्ताब, इस्लाम के दूसरे खलीफ़ा, इनका शासन काल 634-644 ईस्वी तक रहा) को यह स्वीकार नहीं था। तब उसने दार अल-इस्लाम(इस्लामी प्रभुत्व वाले क्षेत्र) को त्याग दिया तथा अपने 30,000 लोगों के साथ रोमन साम्राज्य के किसी क्षेत्र में चला गया। उमर ने अपनी जिद छोड़ी तथा उनसे वापस आने को कहा उनसे उतना ही कर देने को कहा जितना वह देना चाहते थे। परंतु उन्होंने उमर(उमर इब्न अल खत्ताब) की प्रार्थना स्वीकार नहीं की तथा खलीफ़ा को आय के महत्वपूर्ण स्रोत से हाथ धोना पड़ा। (22)

उमर बिन अब्द अल-अज़ीज़(इनका शासन काल 717-720 ईस्वी तक रहा तथा यह उमर इब्न अल खत्ताब से भिन्न) उमय्यद होते हुए भी अन्य उमय्यद खलीफ़ाओं से इस विषय में भिन्न था कि वह जज़िया द्वारा अधिक धनार्जन की अपेक्षा इस्लाम के प्रसार में रुचि रखता था। उसके मिस्री राज्यपाल हय्यान ने उसे लिखा: 'हे, मोमिनों के सेनापति! यदि मिस्र में सब कुछ वैसे ही चलता रहा जैसे अभी चल रहा है तो सभी 'संरक्षित लोग' शीघ्र ही मुस्लिम बन जाएंगे तथा हम उनसे कर (जज़िया) वसूल नहीं कर सकेंगे।' इस समाचार को

पाकर उमर बिन अब्द अल-अज़ीज़ ने यह संदेश देते हुए एक दूत मिस्र भेजा: 'मिस्र में जाओ तथा हय्यान को उसके लिखित शब्दों के लिए उसके सर पर तीस बार चाबुक से वार करो और काहो: "हे हय्यान, जो भी मुस्लिम बन जाए उसकी देखभाल करो, उससे जज़िया मत मांगों। मेरी यही आकांक्षा है कि उनमें से हर कोई मुस्लिम बन जाए। निश्चय ही अल्लाह ने मुहम्मद को उपदेशक के रूप में भेजा है, न कि कर संग्राहक के रूप में"'(अल-वासिती, 1292 ईस्वी के आसपास)

उमर बिन अब्द अल-अज़ीज़ के राज्यपाल तथा जज़िया संग्राहकों ने यद्यपि पूरा प्रयास किया कि इस आदेश की अवहेलना की जाए। खुरासान(उत्तर-पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान, उत्तर-पूर्वी ईरान तथा तुर्कमानिस्तान का दक्षिणी क्षेत्र मध्य-युग में खुरासान के नाम से जाना जाता था; यहाँ इस्लाम के आगमन के समय पारसी तथा बौद्ध धर्मावलम्बी रहते थे) के राज्यपाल जज़िया देने वालों की संख्या अधिकाधिक रखी, क्योंकि उसने मुस्लिम बनने के लिए खतना की, कुरान के अध्याय का स्मरण करने की तथा शब्दों व कार्यों से मुस्लिमों के प्रति निष्ठा रखने की तथा अन्य शर्तें रखीं जिन्हें प्रमाणित

करने के लिए विशेष रूप से राज्यकर्मियों की नियुक्ति की जाती थी। इन सबका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश संख्या में नव-मुस्लिमों को भी जज़िया का बोझ उठाना पड़ा।

इस प्रकार जज़िया ने इस्लाम के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की तथापि, कभी-कभी इसने इस प्रसार को मद्धम भी किया। जब एक जाति यह देखती थी कि इस्लाम स्वीकार करने पर भी जज़िया तथा ततसंगत अपमान से नहीं बचा जा सकता है तो उसके पास इस्लाम स्वीकार करने अथवा इस्लाम  में बने रहने का कोई औचित्य नहीं रह जाता था। कभी-कभी उन्हें अपने पूर्वजों के धर्म में वापस जाना पड़ता था। इस प्रकार वन्क्षु नदी के उत्तर में रहने वाली सुग़दी जाति जज़िया से बचने के लिए मुस्लिम हो गई थी, परंतु जब उन्होंने देखा कि उन्हें उसी प्रकार की बाध्यता तथा अपमान सहने पड़ रहे हैं जो गैर-मुस्लिमों के लिए है तो उन्होंने हज़ारों की संख्या में वे अपने मौलिक धर्म में वापस आ गए। कभी-कभी जज़िया के भय से समूहित उत्प्रवास भी हुए। खलीफ़ा उमर बिन अब्द अल-अज़ीज़ (717-720 ईस्वी) के समय में भी जब खुरासान के राज्यपाल अशरस(अल-जर्राह इब्न अब्दुल्लाह अल-हकामी) ने दोबारा

नव-मुस्लिमों पर जज़िया कर लगा दिया तो 7,000 नव-मुस्लिम समरकन्द छोड़ कर जज़िया मुक्त स्थान की ओर प्रयाण कर गए।

यथार्थ में, न केवल जज़िया वरन गैर-मुस्लिम के साथ युद्ध में हस्तगत लूट का माल(अनफ़ाल/ग़नीमाह) भी इस्लाम में धर्मांतरण की प्रक्रिया को मद्धम करने के लिए उत्तरदायी था। कुरान की दो आयतें लूटपाट जिहाद का अभिन्न हिस्सा तथा आय का वैध स्रोत मानती हैं।(23) लूटपाट(विधिसम्मत) तीन प्रकार की होती हैं:

1. संपत्ति, चल तथा अचल संपत्ति(अमवाल वा अमलक);
2. स्त्री, शिशु, विशेषकर स्त्री(सबाया);
3. बंदी, विशेषकर पुरुष बंदी(उसरा)।

गैर-मुस्लिमों के साथ युद्ध में की गई लूटपाट मुस्लिमों के लिए इतनी अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई कि रसूल अल्लाह के समय भी जब रसूल अल्लाह के एक सहाबी ने एक गैर-मुस्लिम जाति पर आक्रमण की योजना बनाई तथा जब उस

जाति ने न केवल समर्पण कर दिया बल्कि प्राण व संपत्ति की सुरक्षा के आश्वासन पर इस्लाम भी  स्वीकार कर लिया तो उस सहाबी के साथियों ने उसे आड़े हाथों लिया क्योंकि ऐसा करने से मुस्लिम लूटपाट से वंचित हो गए।(24) दूसरे खलीफ़ा उमर(उमर इब्न अल-खत्ताब) ने साद(साद इब्न अबी वक्कास) को इराक विजय(साद द्वारा) के पश्चात लिखा: 'कोई भी वह व्यक्ति जो तुम्हारी आज्ञा का पालन करता है तथा जिसने युद्ध से पूर्व इस्लाम स्वीकार कर लिया है, वह मुस्लिमों में से ही एक है तथा वह उन सब वस्तुओं का स्वामी है जिसके स्वामी तुम लोग हो तथा उसकी इस्लाम में(अर्थात हस्तगत संपत्ति में)साझेदारी है। परंतु वह व्यक्ति जो युद्ध में पराजय के उपरांत तुम्हारी आज्ञा का पालन करता है, मुस्लिम तो वह भी है, परंतु उसकी संपत्ति पर अन्य मुस्लिमों का अधिकार है क्योंकि उसके इस्लाम में आने से पूर्व ही वह उनकी हो चुकी। किसी भी नगर के लोग जो लूट के माल के विभाजन से पूर्व बलात इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश किये जाते हैं, वे स्वतंत्र व्यक्ति की भांति माने जाएंगे, परंतु उनकी संपत्ति पर अन्य मुस्लिमों का अधिकार होगा।'(25)

यह नव-मुस्लिमों को लूटने का एक प्रकार का अनुमति पत्र है।

तथापि, कभी-कभी सीधे-सीधे लूटने की लालच का प्रतिरोध इस आधार पर किया गया कि दूसरे तरीकों से और भी अधिक लाभ होने की संभावना दिखाई दे रही थी। अतएव जब उमर ने दक्षिणी इराक(अस-सवाद) को जीता तो उसने मुस्लिमों की संगणना की ताकि वहाँ की भूमि को मुस्लिमों में वितरित किया जा सके, परंतु अली उसे यह कहकर मना किया कि गैर-मुस्लिम कृषक जज़िया व खराज के रूप में आय के श्रेष्ठतर स्रोत सिद्ध होंगे।(26)

जज़िया की दर क्या थी? इस विषय में कुरान किसी भी प्रकार का निर्देश नहीं देता है। पैगंबर सामान्यतः एक दिनार(5 रुपया) तथा एक जरीब(20 किलो) गेहूं प्रति पुरुष अथवा प्रति स्त्री जज़िया के रूप में लेते थे। यद्यपि अल-बहरीन में उन्होंने एक छूट के तौर पर वहाँ की खजूर की फसल का आधा तथा खम्स(राज्य की आय का पाँचवा हिस्सा) लिया।(27) दूसरे खलीफ़ा उमर इब्न अल-खत्ताब ने जज़िया की तीन श्रेणियाँ निर्धारित कीं:

1. बड़े श्रमिकों, कृषकों तथा कारीगरों पर 6 रुपया(1.2 दिनार);
2. मध्य वर्ग पर 12 रुपया;
3. धनी व्यक्ति पर 24 रुपया।

उन्होंने(उमर इब्न अल-खत्ताब ने) बच्चों, स्त्रियों, वृद्धों तथा भिक्षुओं को जज़िया से छूट दे रखी थी। जज़िया के अतिरिक्त, देहात में कृषकों को खराज(भूमि-कर) भी देना पड़ता था तथा नगरों के बाहरी हिस्सों में रहने वाले लोगों पर, जो सीधे प्रभुत्व में नहीं थे, वहाँ स्थित मुस्लिम सेना के लिए रसद, जैतून के तेल, शहद तथा सिरके का प्रबंध करने की बाध्यता थी। उनके मिस्री राज्यपाल अमर बिन अल-आस ने इस कर में वस्त्र भी जोड़ दिए तथा जज़िया की दर(सामान्य व्यक्ति के लिए) 6 रुपये से बढ़ाकर 10 रुपये कर दी। अधिकाधिक रसद की बलात वसूली की गई। बाद में, उमर के अपने आग्रह पर सीरिया, इराक तथा मिस्र में जज़िया की दर(सामान्य व्यक्ति के लिए) बढ़ाकर 20 रुपये कर दी गई तथा योगक्षेम की अन्य वस्तुएं भी अधिकाधिक वसूलने का प्रावधान किया गया तथा मुस्लिम सेना व यात्रियों

का तीन दिन तक आतिथ्य करने की बाध्यता भी निर्धारित कर दी।(28) इराक में जज़िया अदा करने वालों पर यह भी बाध्य कर दिया गया कि वे मार्गों का तथा बांधों की निगरानी करें तथा इनकी मरम्मत अपने धन से करें। धिम्मियों को मुस्लिम सेना के आवागमन के कारण होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति कभी भी नहीं की जाती थी।(29) उमर(प्रथम खलीफ़ा उमर इब्न अल-खत्ताब) के समय में धिम्मियों के वाणिज्य तथा व्यापार पर उशुर नामक कर भी लगता था।(30) चौथे खलीफ़ा अली(अली इब्न अबू तालिब) के समय तक राष्ट्र कोश के निमित्त 8 प्रकार के राजस्व चलन में थे:

1. युद्ध में हस्तगत संपत्ति/ लूटपाट(अनफ़ाल/ ग़नीमाह);
2. जज़िया;
3. खराज(भूमिकर);
4. फ़े(संधि में निर्धारित कर);
5. उशुर अथवा दशमांश(वाणिज्य तथा व्यापार कर);
6. सवाफ़िय्य(मुस्लिम सेना के आक्रमण के समय गैर-मुस्लिमों द्वारा त्यागी गई भूमि तथा ग्राम अथवा गैर-

मुस्लिम की मृत्यु के उपरांत छोड़ी गई भूमि, यह खलीफ़ा के लिए अलग से रखी जाती थी);

7. बनू नादिर(अथवा बनू नुजैर) फ़दक, खैबर तथा मक्का के खेत व नखलिस्तान, जिसकी आय, रसूल के समय से, मुस्लिम राज्य में जमा की जाती थी;
8. ज़कात।

उमय्यद खलिफ़ाओं ने राजस्व के उपरोक्त स्रोतों की सूची में कुछ अन्य अल्पाय के स्रोत भी जोड़ दिए थे। उपरोक्त सूची में, मुस्लिमों के लिए केवल निम्न करों की बाध्यता थी।

1. ज़कात;
2. खराज: यह सामान्य कर था, परंतु सदैव नहीं लागू होता था। यदि कोई व्यक्ति धर्मपरिवर्तन करके मुस्लिम बनने के उपरांत भी अपनी भूमि रखता है तो उस पर यह लागू होता था। यद्यपि उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने खुरासान वासियों को इस्लाम स्वीकार करने के उपरांत खराज अदा करने से मुक्त कर दिया था।(31)
3. उशुर(व्यापार तथा वाणिज्य कर) का एक अत्यंत क्षुद्र

भाग, शेष धिम्मियों के जिम्मे रखा गया था।

अबू यूसुफ़ ने खराज की दर धिम्मियों के लिए मुस्लिमों से दोगुनी रखी।(32) जहां तक ज़कात का प्रश्न है, जिसे ऐसा दिखाने की चेष्टा की जाती है कि जैसे गैर-मुस्लिमों के लिए जज़िया है उसी प्रकार मुस्लिमों के लिए ज़कात है, यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मुस्लिमों से यह आशा की जाती थी कि वे अपनी वार्षिक आय का 40% ज़कात के रूप में राजकोष में दें तथापि, समय के साथ यह विकल कर देने वाला कर नहीं रह गया था:

1. इसे कभी भी उस रूप में नहीं लिया जाता था जिस प्रकार से जज़िया वसूला जाता था;
2. इसका उद्देश्य दान-पुण्य के कार्यों के लिए था;
3. इससे मजहबी सवाब(थवाब) प्राप्त करना अभीष्ट था तथा
4. यह व्यक्ति के विवेक पर छोड़ दिया गया था।(अर्थात यह उसकी इच्छा पर था कि वह  दे या न दे)

इस प्रकार जज़िया के निहितार्थ, प्रतिवर्ष, प्रतिव्यक्ति कुछ रुपयों के कर से भी कहीं अधिक तीक्ष्ण हैं। यह असीमित शोषण के द्वार खोल देता है तथा घाव पर नमक छिड़कने से भी अधिक कष्टप्रद स्थिति में ले आता है जहां व्यक्ति अपनी ही आय के लिए मोल-तोल करता है।(ताकि जज़िया कम देना पड़े) जब कभी भी राज्य को धन की आवश्यकता होती थी, धिम्मियों को ही उत्पीड़ित किया जाता था। शांतिपूर्ण संधियों द्वारा समर्पित नगरों यथा दक्षिणी इराक(अस-सवद) के हीरा, आइन अत-तमर तथा बानिकियाह तथा सीरिया के दमिश्क, बालाबक्क, हिम्स तथा जेरूसलम पर सामूहिक जज़िया लागू किया गया, अर्थात एक नगर पर जज़िया की राशि स्थिर कर दी गई, यदि कोई व्यक्ति मर जाता अथवा धर्मांतरण करके मुस्लिम हो जाता तथा इस प्रकार जज़िया से मुक्त हो जाता तो इन सबके हिस्से का जज़िया भी धिम्मियों को ही देना पड़ता था। दृष्टांत के लिए अरबों द्वारा मातृभूमि नाजरान से निष्कासित ईसाइयों द्वारा इराक में स्थापित किये गए अन-नाजरानिय्याह की जनसंख्या, मृत्यु तथा धर्मांतरण के कारण बहुत कम  हो गई थी, परंतु न तो मुआविय्याह तथा न ही कोई और जज़िया की राशि सरलता से कम करके लिए तैयार था। याहया बिन आदम(757-818) लिखते हैं:

‘प्रत्येक व्यक्ति पर कर की वह दर लगाई गई तो आपसी सहमति से निर्धारित हुई है, जहां भूमि तथा संपत्ति से अर्जित आय को ध्यान में रखा गया है, परंतु इनमें से किसी की मृत्यु अथवा इस्लाम में धर्मांतरण से कर की कुल देय राशि में कुछ भी कमी नहीं की जाएगी तथा तथा उसे पूर्ववत शेष लोगों से उनकी भुगतान करने की क्षमता के आधार पर लिया जाएगा।(33)(यहाँ वाक्य का अंतिम भाग विडंबनापूर्ण है!)

उमर बिन अब्द अल-अज़ीज़ में इतना विवेक था कि वह जज़िया में अंतर्निहित इस क्रूर व्यवस्था का अंत कर दे तथा एक समान नियम लागू करे जहां प्रत्येक धिम्मी को केवल अपना ही कर देने की बाध्यता हो। (34) दूसरी ओर जब अन्य व्यक्ति के हिस्से का जज़िया देने की बाध्यता धिम्मियों पर बढ़ते-बढ़ते असहनीय हो गई तब इराक के राज्यपाल हज्जाज इब्न यूसुफ़ ने धर्मांतरित लोगों पर दोबारा जज़िया लगा दिया।

कभी-कभी, जज़िया के लिए लक्षित जनता इतनी विवश हो जाती थी कि वह अपनी स्त्रियों तथा बच्चों को बेचने पर विवश हो जाती थी ताकि जज़िया अदा कर सके। इस चलन

का अनुसरण करते हुए मिस्र के राज्यपाल अमल इब्न अल-आस ने सिकंदरिया के पास स्थित बकराह नामक नगर पर 13 हज़ार दिनार का सामूहिक जज़िया कर निर्धारित किया तथा निवासियों के लिए यह विकल्प खुला रखा कि वे अपनी स्त्रियों तथा बच्चों को बेचकर जज़िया के लिए आवश्यक धनराशि की व्यवस्था कर सकते हैं।(35)

पुरातन न्यायविद व धर्मशास्त्री हमें द्वितीय खलीफ़ा उमर इब्न अल-खत्ताब का मसविदा प्रस्तुत करते हैं, जो सीरिया के ईसाइयों के पास एक पत्र(व उसके प्रत्युत्तर) के रूप में सुरक्षित था तथा जिसे ईसाइयों ने सीरिया के एक धिम्मी की हैसियत से अबू उबैदाह को दिया था जिसकी पुष्टि उमर ने भी की थी। इस पत्र में ईसाइयों की ओर से निम्न तथ्य अंकित किये गए हैं:

1. दमिश्क में तथा उसके आस-पास कोई चर्च, मठ, आराधना-स्थल, भिक्षु की कुटिया का निर्माण नहीं होगा;
2. हमारे चर्चों में से जो जीर्ण-शीर्ण हो चुके हैं, उनकी मरम्मत नहीं कराई जाएगी तथा मुस्लिम क्षेत्रों में

स्थित चर्चों की भी मरम्मत नहीं कराई जाएगी;

3. दिन अथवा रात किसी भी समय हमारे चर्चों के द्वार मुसलमानों के लिए खुले रहेंगे, जो वहाँ रुक सकते हैं;
4. हम अपने द्वार यात्रियों तथा पथिकों के लिए खुले रखेंगे;
5. हम कभी भी अपने मध्य तथा अपने घर में किसी गुप्तचर को शरण नहीं देंगे, न ही मुस्लिमों के प्रति विश्वासघात करने वाले को शरण देंगे;
6. हम अपने चर्चों में घंटा धीरे-धीरे बजाएंगे;
7. हम चर्चों में सलीब का प्रतीक नहीं लगाएंगे;
8. हम प्रार्थना में अथवा चर्च में पाठ करते समय अपना स्वर ऊंचा नहीं करेंगे;
9. जुलूस(धार्मिक जुलूस) निकालते समय सलीब अथवा किताब(बाइबल) साथ लेकर नहीं चलेंगे;
10. ईस्टर अथवा ईस्टर से पहले वाले रविवार को होने वाला जुलूस नहीं निकालेंगे;
11. हम अपने मृत लोगों पर ऊंचे स्वर में रुदन नहीं करेंगे, न ही मुस्लिमों के बाज़ार मध्य से ताबूतों के ऊपर मोमबत्ती जलाकर नहीं गुजरेंगे, न ही हम

अपनी शव-यात्रा उनके निकट से होकर करेंगे;

12. हम अंगूर की शराब नहीं बेचेंगे, न ही मुस्लिमों के संग मूर्तियों के साथ जुलूस निकालेंगे;
13. हम किसी मुस्लिम को अपने धर्म के प्रति आकृष्ट नहीं करेंगे, न ही उन्हें इस ओर आमंत्रित करेंगे;
14. हम किसी ऐसे गुलाम को नहीं रखेंगे जो पूर्व में मुस्लिमों के स्वामित्व में था;
15. किसी भी संबंधी को इस्लाम स्वीकार करने से नहीं रोकेंगे, यदि वह ऐसा चाहता हो;
16. हम अपने धर्म को वहीं तक सीमित रखेंगे जहां वह वर्तमान में है;
17. हम कलनसुवाह(पादरियों द्वारा धरण की जाने वाली एक प्रकार की ग्रीक टोपी) की बनावट में, पगड़ी, जूते में मुस्लिमों की समानता नहीं करेंगे, न ही बालों की मांग निकालने के ढंग में, न ही अश्वारोहण करने के तरीके में;
18. हम उनकी(मुस्लिमों की) भाषा का प्रयोग नहीं करेंगे, न ही उन्हें उनके नाम से पुकारेंगे;
19. हम अपने बालों को सामने से काटेंगे तथा लटों को दो भागों में विभाजित करेंगे;

20. हम अपनी कमर में जुन्नार( एक प्रकार का कमरबन्द) बाँधेंगे;

21. हम अपनी मुहरों पर अरबी भाषा में कुछ नहीं लिखेंगे;

22. हम घोड़े की काठी पर सवार नहीं होंगे;(अर्थात बिना काठी के ही घोड़े पर सवार होंगे)

23. हम हथियार नहीं रखेंगे, न ही अपने घर में शस्त्र संग्रह करेंगे, न ही तलवार धारण करेंगे;

24. हम उनकी(मुस्लिमों की) सभाओं में मुसलमानों का आदर करेंगे तथा मार्ग में उनका पथप्रदर्शन करेंगे, सार्वजनिक सभाओं में हम उनके कहने पर खड़े हो जाएंगे;

25. हम अपने घर उनके घरों से ऊंचे नहीं बनाएंगे;

26. हम अपने बच्चों को कुरान नहीं पढ़ाएंगे;

27. हम मुस्लिमों के साथ सिवाय व्यापार के कहीं और साझेदारी नहीं करेंगे;

28. प्रत्येक मुस्लिम यात्री की हम अपनी परम्परागत रीति से आवभगत करेंगे तथा तीन दिन तक उन्हें भोजन देंगे;

29. हम किसी मुस्लिम को गाली नहीं देंगे तथा हममें से जो व्यक्ति मुस्लिम पर प्रहार करेगा वह अपना अधिकार(प्राण तथा संपत्ति पर) खो बैठेगा। (36)

मुस्लिम विधिशास्त्र के चारों दिग्गज इस बात पर सहमत हैं कि दार अल-इस्लाम के बड़े नगरों था उपनगरों में धिम्मियों का कोई नया पूजा-स्थल नहीं बन सकता। इमाम अबू हनीफ़ा के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के अनुसार इस प्रकार का निर्माण अन्य स्थानों पर भी नहीं हो सकता। इमाम अबू हनीफ़ा किताब वालों(यहूदी तथा ईसाई) को ऐसा करने की अनुमति देते हैं बशर्ते कि पूजा-स्थल नगर के परकोटे से कम से कम एक मील की दूरी पर हो। इमाम अबू हनीफ़ा के अतिरिक्त अन्य विद्वान अपने गिरजाघरों तथा यहूदी मंदिरों की मरम्मत कर सकते हैं यदि धिम्मियों को यह स्थान(जहां मंदिर अथवा गिरजाघर स्थित हैं) उपहार(अथवा रियायत करके उनके पास ही रहने दिया गया) में मिला हो। ऐसा प्रतीत होता है कि इब्न हनबल हर प्रकार की मरम्मत का विरोध करते प्रतीत होते हैं, परंतु कभी-कभी उनके विचार

इसके विपरीत भी हैं।

जहां तक साक्ष्य, आपराधिक कानून, विवाह, विरासत इत्यादि का प्रश्न है, धिम्मी के लिए वैधानिक सीमितता भी थीं। वह मुस्लिम से विरासत में कुछ भी नहीं पा सकता था। उसकी पत्नी के धर्मांतरण पर(मुसलमान बनने पर),उसे या तो स्वयं धर्मांतरण करना होता अथवा उसे अपनी पत्नी को तलाक देना होता था। यदि उसे सेना में नियुक्त किया जाता था तो वह भत्ते का अधिकारी तो था, परंतु लूटपाट में (ग़नीमाह) उसे विधि अनुसार कुछ भी नहीं मिलना था।(37) इसके अतिरिक्त कुछ संविधान से इतर भी बाध्यताएं तथा अवमाननाएं थीं जो धिम्मियों पर निर्लज्जता के साथ लागू की गईं थीं। मुस्लिम जनता अपने धिम्मी पड़ोसियों के बाग़ों तथा उद्यानों से फल तोड़कर ले जा सकती थी, अपने पशु उनके चारागाहों में चरा सकती थी, उनसे मुफ़्त में अपना काम करा सकती थी। ज़ायद बिन सासाह ने बसरा के राज्यपाल को(36-40 हिजरी) कहा कि यदि मुस्लिम किसी धिम्मी के घर का द्वार खटखटाता है तथा यदि द्वार नहीं खुलते तो मुस्लिम की इच्छा हो तो वह द्वार तोड़कर खोल सकता है तथा भीतर से बकरियाँ लेकर उनका वध करके खा सकता

है।(38) वास्तव में, मुस्लिम शासन में एक गैर-मुस्लिम के लिए, अनेक बाध्यताओं व अवमाननाओं में, जज़िया ही सबसे अधिक अपमानजनक बाध्यता थी। यही कारण है कि अनेक गैर-मुस्लिम शासक तथा जातियाँ, मुस्लिम सेना के लिए, अपने खजाने का मुंह खोलने के लिए उद्यत थीं, परंतु जज़िया अदा करने से बचना चाहती थीं। इस संदर्भ में, बैजन्तिया(Byzantine) के राज्यपाल द्वारा मुस्लिमों को दिया गया प्रस्ताव उल्लेखनीय है। सच तो यह है कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि गैर-मुस्लिमों के लिए जज़िया का परिमाण तथा इसके साथ जुड़ी हुई अन्य भेदभावपूर्ण वित्तीय बाध्यताएं की भयप्रद नहीं थीं वरन इससे भी अधिक कष्टप्रद यह था कि जज़िया एक निकृष्टतम ग़ुलामी तथा पूर्ण समर्पण का प्रतीक था तथा यह समर्पण प्रक्रियाओं में परिलक्षित होता था, चाहे यह प्रक्रिया लिखित हो अथवा अलिखित हों, इन प्रक्रियाओं का जज़िया के भुगतान करते समय कार्यान्वयन होता था ताकि धिम्मी को यह अच्छी तरह से अनुभव हो सके कि वह धिम्मी है।(39)

हम पूर्व में यह देख चुके हैं कि कभी-कभी जज़िया अदा

करने की बाध्यता धर्मांतरण के बाद भी बनी रहती थी। यह एक विचित्र प्रकरण था। परंतु जज़िया से मुक्ति होते हुए भी नव-मुस्लिमों का शोषण एक विचित्र संघटना है। इस्लाम स्वीकार करने के बावजूद, एक गैर-अरब को अनेकों प्रकार की विवशताओं तथा अवमाननाओं का सामना करना पड़ता था।

उमय्यद खलिफ़ाओं के अधीनस्थ, इस्लाम स्वीकार करने वाला कोई भी गैर-अरब किसी अरब कन्या से विवाह नहीं कर सकता था। हज्जाज बिन यूसुफ़ के आदेश पर, अल कूफ़ाह की मस्जिद में कोई भी ऐसा गैर-अरब प्रार्थना सभा का नेतृत्व नहीं कर सकता था, न ही ऐसे व्यक्ति को काज़ी अथवा न्यायाधीश बनाया जा सकता था। अनेक प्रकरणों में उसके साथ धिम्मी जैसा व्यवहार किया जाता था। गैर-अरब धर्मांतरित मुस्लिमों को मवाली [मावला(एकवचन)] कहा जाता था, यह व्यंजक मुक्त किये गए ग़ुलामों के लिए भी प्रयुक्त किया जाता था तथा गैर-अरब को उसी के समतुल्य माना जाता था। हम यहाँ अधिक गहराई में नहीं जा सकते। इतना कहना पर्याप्त होगा कि इतिहासकार मसूदी अपनी

रचना 'मुरव्वाज अध-धहाब(Murawwaj adh-Dhahab)' में एक आयत का उद्धरण देते हुए कहता है कि 'जो कोई भी अपमान, बदनामी, निरादर सब कुछ एक साथ देखना चाहता है तो उसे एक मवाली की दशा देखनी चाहिए।'

8 हिजरी में रसूल अल्लाह द्वारा मक्का विजय तक, गैर-मुस्लिम प्रजा की कोई अवधारणा नहीं थी। गैर-मुस्लिमों के साथ कुछ विशेष शर्तों पर केवल संधियां मात्र थीं। उनको प्रजा के रूप में व्यवहृत करने का विचार बाद में जज़िया के साथ आया। मुस्लिम शासन के अधीनस्थ गैर-मुस्लिम अपने प्राण तथा संपत्ति के संरक्षण के साथ रह सकते थे तथा कुछ सीमित्ताओं के साथ अपने धर्म का अनुपालन भी कर सकते थे बशर्ते कि वे जज़िया अदा करें। यह सच है कि इस प्रकार से संरक्षित गैर-मुस्लिम अथवा धिम्मी नागरिक नहीं थे, न तो प्रथम श्रेणी के और न ही द्वितीय श्रेणी के नागरिक थे वरन मुस्लिम राष्ट्र की निरीह प्रजा मात्र थे, जिनके किसी भी प्रकार के राजनैतिक अधिकार नहीं थे, न ही नाममात्र के मौलिक मानव-अधिकार ही थे। मौदूदी(20 सवीं सदी के भारतीय

मुस्लिम विधिशास्त्री सैयद अब्दुल आला मौदूदी) लिखते हैं: 'रसूल अल्लाह तथा वैधानिक खलीफ़ाओं(प्रथम चार खलीफ़ा) के समय, किसी भी ऐसे धिम्मी का कोई दृष्टांत उपलब्ध नहीं है जहां उसे सलाहकार समिति(मजलिस-ए-शूरा) का सदस्य अथवा किसी क्षेत्र का राज्यपाल अथवा किसी स्थान पर न्यायाधीश अथवा प्रशासन के किसी विभाग का कोई मंत्री अथवा किसी सेना का सेनापति नियुक्त किया गया हो अथवा धिम्मी को यह अधिकार दिया गया हो कि वह खलीफ़ा के चुनाव में प्रतिभागिता करे। यद्यपि रसूल अल्लाह तथा वैधानिक खलीफ़ाओं के समय धिम्मी अस्तित्व में थे तथा उनकी जनसंख्या करोड़ों में थी।(40)'

यथार्थ में, धिम्मी एक ऐसा वर्ग था जिसे बस किसी तरह सहन किया जाता था, जो अपने मसलों का प्रबंधन, अपनी इच्छा के विपरीत निर्धारित किये गए नियमों के अनुसार, करते हुए जीवन-यापन करता था।

तथापि, इस तिमिर में रजत सदृश प्रकाश की एक किरण थी। कभी-कभी उन परिस्थितियों में जज़िया वापस कर दिया जाता था जब एक उच्चतर शक्ति की ओर से किये गए

आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए मुस्लिम वर्ग, धिम्मियों को स्वयं अपनी रक्षा करने के लिए छोड़ देते थे। दृष्टन के लिए, जब अबू उबैदाह सीरिया स्थित हिम्स के युद्ध में हरक्यूलस(Heraclius) से हार गया तो ऐसा कहा जाता है कि उसने नगर में रह रहे धिम्मियों से लिया हुआ जज़िया इस आधार पर वापस कर दिया कि उसकी ऐसी स्थिति नहीं है कि वह उन्हें उनके शत्रुओ से संरक्षित कर सके, यद्यपि धिम्मियों ने इस निर्णय का इस तर्क के आधार पर विरोध किया के वे लोग ग्रीक शासन(ईसाई धर्मावलम्बी) की अपेक्षा मुस्लिम शासन के अधीनस्थ रहना चाहते हैं।(41) सी एच बीकर तथा अल कैटेनी(C. H. Beeker and L. Caetani) इस आख्यान का इस आधार पर खंडन करते हैं कि उस समय अरबों में वह बुद्धि विकसित नहीं हुई थी कि वे कर तथा संरक्षण का पारस्परिक संबंध स्थापित कर सकें। कैटेनी के विचार में इस बात की संभावना नहीं है कि ग्रीक आधिपत्य के समय अरब जज़िया उगाह सकें।(42) परंतु डेनेट(Denett) एक अनाम सीरियन वृत्तान्त का हवाला देते हुए कहते हैं कि यारमूक(Yarmuk) के युद्ध(636 ईस्वी) से पूर्व की अवधि में दमिश्क का जज़िया भी वापस कर दिया गया था। (43)

यह ध्यान देने योग्य है कि अनातोलिया(Antioch) के निकटस्थ आबाद अल-जराजिमाह की ईसाई जाति को जज़िया की बाध्यता से मुक्त कर दिया गया था तथा उन्हें जिहाद में प्रतिभागिता करने के लिए कहा गया था।(44)

तथापि, यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इस प्रकार के अपवादों को यदि छोड़ दिया जाए तो धिम्मी के लिए इस प्रस्ताव पर विचार करना नैतिक स्तर पर दुष्कर था कि वह मुस्लिमों की उस मुहिम में उनका साथ दें जो उनके(धिम्मी के)अपने धर्म तथा अपने समुदाय के विनाश के लिए थी। मुसलमानों द्वारा छेड़ा गया युद्ध एक साधारण युद्ध नहीं हुआ करता था; प्रायः यह युद्ध उस वस्तु के विरुद्ध था जिसे धिम्मी सबसे अधिक प्रिय समझते थे। ऐसे युद्ध में कोई भी गैर-मुस्लिम मुसलमानों का साथ नहीं देना चाहता होगा, सिवाय उस स्थिति के कि जब वह स्वयं अपने धर्म का द्रोही बनना चाहता हो। तथापि, यदि मुस्लिमों को ऐसा कोई व्यक्ति मिलता होगा तो यह स्वाभाविक है कि वे उसका स्वागत ही करते होंगे। जो कुछ भी दांव पर लगा होता था, उसकी

तुलना में जज़िया से मुक्ति कुछ भी नहीं है। परंतु यह सच है कि कभी-कभी मुस्लिमों को ऐसे धिम्मी मिल जाते थे तथा यह सच्चाई धिम्मियों के असीम उत्पीड़न के सच की विरोधाभासी थी तथा यह मुस्लिमों के लिए राहत की बात थी।

आइए इस चर्चा का समापन, युद्ध तथा शांति के विषय पर इस्लामी विधिशास्त्र के एक समकालीन लेखक के उद्धरण से करते हैं: 'इस विषय पर प्रश्न पूछे जाते हैं कि क्या अविश्वास पर दृढ़ रहने के एवज़ में धनराशि ले लेना, इस्लाम के उस अंतिम उद्देश्य के साथ असंगत नहीं है जिसमें सच्चे धर्म(इस्लाम) की सर्वश्रेष्ठता स्थापित करना अभीष्ट है? सरखासी(45) का यह मानना है कि अभीष्ट(जज़िया लागू करके धन एकत्र करना) अर्थोपार्जन नहीं है, परंतु यह अविश्वासी लोगों को इस्लाम के भीतर लाने का एक अत्यंत विनम्र प्रयास है। मुस्लिमों के मध्य रहने की अनुमति देकर, धिम्मियों को इस्लाम धर्म की सुंदरता के प्रति आकृष्ट होने के अवसर प्राप्त होगा तथा वे अपनी इच्छा से इसे स्वीकार कर लेंगे।'(46)

फ़ुटनोट

1. डैनियल सी. डेनेट(Daniel C. Denett), Conversion and Poll Tax in Early Islam,Historical Monographs, No.XXII (Cambridge: Harvard University Press, 1950);
2. शिबली नुमानी द्वारा लिखित ‘ अल-जज़िया’, रसाई-ए-शिबली(दिल्ली: रहमानी प्रेस) पृष्ठ:76;
3. डैनियल सी. डेनेट(Daniel C. Denett),Conversion and Poll Tax in Early Islam,Historical Monographs, No.XXII (Cambridge: Harvard University Press, 1950) पृष्ठ:15;
4. डैनियल सी. डेनेट(Daniel C. Denett),Conversion and Poll Tax in Early Islam,Historical Monographs, No.XXII (Cambridge: Harvard University Press, 1950) पृष्ठ:45-55;
5. सूराह अल-तौबाह 9/29;

6. सूराह अल-अमीन 6/157;
7. एम. जे. किस्टर के अनुसार, 'याद' से अभिप्राय समृद्धि, सामर्थ्य अथवा संसाधन है, उन्होंने Arabica, XI (1964),पृष्ठ-278 का संदर्भ लिया है। एम.एम.ब्रायमैन ने इसका तात्पर्य 'लाभ पहुंचाना' निकाला है, उन्होंने अपनी पुस्तक 'The Spiritual Background of Early' Islam (Leiden: E. J. Brill, 1972), पृष्ठ: 199-212 में इस पर चर्चा की है। यद्यपि इन अभिप्रायों का पूर्व-इस्लामी कविताओं में प्रयुक्त इसी व्यंजक के निहितार्थ से साम्य है तथापि, कुरान के संदर्भ में इस व्याख्या को आयातित करके जज़िया को एक उपहार के रूप में दर्शाना एक दूर की कौड़ी है जो एक अतार्किक चेष्टा है।
8. सूराह अत-तौबाह 9/3;
9. सीरात उन-नबी, इब्न हिशाम पृष्ठ:665;
10. बुखारी-खंड-2, किताब अल-जिहाद वा अस-सियार, हदीस :300,405 पृष्ठ-144, 196; किताब अल-मग़ज़ी, हदीस 1557, पृष्ठ-694;
11. सूराह अन-अनफ़ाल 8/41 तथा 8/69;

12. मुजाद्दीद-ए-अल्फ़-ए-थारी, मकतूबात-ए-इमाम-ए-रब्बानी(कानपुर: नवल किशोर प्रेस), खंड-1, पत्र संख्या 163, पृष्ठ-166;
13. सूराह मरियम 19/28;
14. **لأيكة تغدو قلقان ودينها معارضا في بطنها جنينها مخالفا دينا أنناصرا دينها :** इसके अनुवाद के लिए हमें तबक़ात इब्न साद के उपलब्ध अनुवाद(तबक़ात इब्न साद खंड-3, पृष्ठ 148) पर निर्भर रहना पड़ा है;
15. सूराह अल-इमरान 3/59;
16. मुस्लिम(सहीह मुस्लिम) खंड-2, किताब अल-अदब, हदीस 502;
17. सूराह अल-इमरान 3/61;
18. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ 106 तथा इमाम अबू यूसुफ़, किताब अल-खराज, पृष्ठ 72-73.
19. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-

बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद (नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ 110-113;

20. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ 268-71;

21. डैनियल सी. डेनेट(Daniel C. Denett),Conversion and Poll Tax in Early Islam,Historical Monographs, No.XXII (Cambridge: Harvard University Press, 1950) पृष्ठ:86;

22. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ

205;

23. सूराह अन-अनफ़ाल 8/41; सूराह अल-फतह 48/15;

24. शिबली नुमानी द्वारा रचित 'सीरात-उन-नबी, खंड-3, सुलेमान नदवी द्वारा संपादित व विस्तारित (दार-उल-मुसलमीन, आजमगढ़, तृतीय संस्करण, 1339 हिजरी), पृष्ठ-528;

25. याहया बिन आदम (757-818 ईस्वी), किताब अल-खराज, ए.बेन शेमेश (लीडेन: ई.जे. ब्रिल,1958){A.ben Shemesh (Leiden: E.J. Brill,1958)} द्वारा "Taxation in Islam" शीर्षक के साथ संपादित व अनूदित, आलेख: 49-50, पृष्ठ:31;

26. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ:382;

27. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर

बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ;129;

28. खुर्शीद अहमद फ़रीक़, तारीख-ए-इस्लाम(दिल्ली: जमाल प्रिंटिंग प्रेस), पृष्ठ 80,116,120;

29. खुर्शीद अहमद फ़रीक़, तारीख-ए-इस्लाम(दिल्ली: जमाल प्रिंटिंग प्रेस), पृष्ठ 121;

30. खुर्शीद अहमद फ़रीक़, तारीख-ए-इस्लाम(दिल्ली: जमाल प्रिंटिंग प्रेस), पृष्ठ 133;

31. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठः 606;

32. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-

बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ 132;

33. याहया बिन आदम (757-818 ईस्वी), किताब अल-खराज, ए.बेन शेमेश (लीडेन: ई.जे. ब्रिल,1958){A.ben Shemesh (Leiden: E.J. Brill,1958)} द्वारा "Taxation in Islam" शीर्षक के साथ संपादित व अनूदित, आलेख: 20, पृष्ठ:26;

34. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ: 111-112;

35. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू

अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ: 324;

36. इब्न असकीर, तारीख, खंड-1, पृष्ठ:149, ए.एस. ट्रिटोन द्वारा अंग्रेजी में अनूदित {A.S. Tritton, The Caliphs and Their Muslim Subjects (London, 1930)}, पृष्ठ: 6-8. ए.एस. ट्रिटोन की इस अनुवाद में, पृष्ठ: 5-6 में, कुछ और संस्करण दिए हैं। इस विषय में 'शाफ़ी'(इमाम शाफ़ी) का लेख अत्यंत सुस्पष्ट व विस्तृत है, जो उमर के मसौदे के प्रावधानों की चर्चा करता है, शाफ़ी के अनुसार एक मुस्लिम शासक तथा किताब वालों (ईसाई तथा यहूदी) के मध्य संधि हेतु यह एक आदर्श मसौदा है: शाफ़ी द्वारा लिखित 'किताब अल-उम्म' खंड-4, पृष्ठ: 118 देखें। इस लेख के अनुवाद के लिए ए.एस. ट्रिटोन द्वारा अंग्रेजी में अनूदित {A.S. Tritton, The Caliphs and Their Muslim Subjects (London, 1930)}, पृष्ठ: 12-16 देखें तथा माजिद खद्दूरी द्वारा लिखित 'War and Peace in the Law of Islam (Baltimore: John Hopkins

Press, 1955), पृष्ठ: 194 देखें;

37. शाफ़ी द्वारा लिखित 'किताब अल-उम्म' खंड-4, पृष्ठ: 177 तथा मावर्दी द्वारा लिखित 'किताब अल-अहकाम अस-सुल्तानियाह' पृष्ठ: 250-251 देखें। माजिद खद्दूरी द्वारा लिखित 'War and Peace in the Law of Islam (Baltimore: John Hopkins Press, 1955), पृष्ठ: 198 में उद्धृत;

38. खुर्शीद अहमद फ़रीक़, तारीख-ए-इस्लाम(दिल्ली: जमाल प्रिंटिंग प्रेस), पृष्ठ:570;

39. यहाँ तक कि अल-ग़ज्ज़ाली जैसे सूफ़ी दार्शनिक ने भी जज़िया की उगाही के लिए कठोर उपायों की अनुशंसा की है: उनकी लिखी 'किताब अल-वाजीज' खंड-2, पृष्ठ-200 देखें;

40. अबुल आला मौदूदी द्वारा लिखित 'इस्लामी रियासत( द्वितीय संस्करण, लाहौर,ढाका, कराची: ईदाराह-ए-मारिफ़-ए-इस्लामी के तत्वावधान में इस्लामी पब्लिकेशन्स लिमिटेड द्वारा 1967 में प्रकाशित) पृष्ठ: 353;

41. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन

अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ: 206-207;

42. डैनियल सी. डेनेट(Daniel C. Denett),Conversion and Poll Tax in Early Islam,Historical Monographs, No.XXII (Cambridge: Harvard University Press, 1950) पृष्ठ:56-57;

43. डैनियल सी. डेनेट(Daniel C. Denett),Conversion and Poll Tax in Early Islam,Historical Monographs, No.XXII (Cambridge: Harvard University Press, 1950) पृष्ठ:57;

44. अहमद बिन याहया बिन जाबिर अश-शबीर बिन अल-बालाधुरी, सामान्य चलन में केवल अल-बालाधुरी नाम से ख्यात द्वारा लिखित 'फ़ुतूह अल-बुलदान' का सैयद अबू-ए-खैर मौदूदी द्वारा उर्दू अनुवाद(नफ़ीस अकादमी, 1962, कराची) पृष्ठ:

237;

45. अस-सरखासी द्वारा लिखित 'किताब अल-मबसूत, खंड-10, पृष्ठ-77, माजिद खद्दूरी द्वारा लिखित 'War and Peace in the Law of Islam (Baltimore: John Hopkins Press, 1955), पृष्ठ: 177 में उद्धृत;

46. माजिद खद्दूरी द्वारा लिखित 'War and Peace in the Law of Islam (Baltimore: John Hopkins Press, 1955), पृष्ठ: 177 देखें।

# अध्याय-3

# भारत में जज़िया(JIZYAH IN INDIA)

भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर अरबों का अतिक्रमण यथा सिंध अथवा/तथा बलूचिस्तान(उस समय यह क्षेत्र मकरान कहलाता था) पर बहुत शीघ्र ही आरंभ हो गया था। द्वितीय खलीफ़ा उमर(उमर इब्न अल-खत्ताब) के समय से ही यह शुरू हुआ तथा उस्मान, अली, मुआवियाह (तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम खलीफ़ा) तथा बाद के खलीफ़ाओं के समय तक ज़ारी रहा। हज्जाज बिन यूसुफ़(इराक का राज्यपाल : 694-714 ईस्वी) के आदेश पर 19 वर्षीय(कुछ स्रोतों में 17 वर्षीय) मुहम्मद बिन कासिम ने सिद्ध पर आक्रमण करके 712 ईस्वी में उसे जीत लिया तथा उन हिंदुओं तथा बौद्धों पर जज़िया लगाया जो इस्लाम स्वीकार नहीं करना चाह रहे थे, सिवाय ब्राह्मणों तथा तपस्वियों के। जज़िया के लिए

लक्षित समुदाय को तीन वर्गों में विभक्त किया गया, सर्वोच्च वर्ग को प्रतिव्यक्ति चांदी के 48 दिरहम(चांदी के 24 रुपये), मध्य वर्ग को प्रतिव्यक्ति 24 दिरहम तथा निम्नतम वर्ग को 12 दिरहम अदा करना तय किया गया। मुहम्मद बिन कासिम ने हिंदुओं तथा बौद्धों के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया: 'तुममें से जो मुसलमान बन जाएगा तथा इस्लाम के भीतर आ जाएगा, उसका कर वापस कर दिया जाएगा; परंतु जो अपने पूर्वजों की आस्था पर बने रहेंगे, उन्हें अपमानित(गज़ंद) किया जाएगा तथा उनसे जज़िया लिया जाएगा जिसके एवज में वे अपने पिता तथा पितामहों के धर्म पर अडिग रह सकते हैं।'(1)

इस पर, कुछ लोग पलायन कर गए ताकि वे अपने पूर्वजों की आस्था बरकरार रख सकें तथा ऐसे लोगों से उनके घोड़े, घरेलू सेवक तथा अन्य संपत्ति हस्तगत कर ली गई। (2)

मुहम्मद बिन कासिम ने व्यापारियों तथा कारीगरों की जनगणना की तथा उन पर प्रतिव्यक्ति चांदी के 12 दिरहम का जज़िया लगाया, क्योंकि लूटपाट में वे अपनी संपत्ति पहले ही गँवा चुके थे।(3)

सुबुक्तगीन(ग़ज़नी का तुर्क सुल्तान) से पराजित होने के उपरांत, राजा जयपाल (10सवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गांधार का हिन्दू राजा) ने जज़िया तथा खराज अदा करने का प्रस्ताव रखा।(4)

मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण तथा औरंगज़ेब की मृत्यु के मध्य की 12 शताब्दियों की अवधि में तत्कालीन भारत में जज़िया कमोबेश अमल में था यद्यपि कुछ संक्षिप्त अंतराल भी थे, जिनकी हम आगे चर्चा करेंगे।

उलेमा वर्ग ने सुल्तान इल्तुतमिश तथा कुछ अन्य सुल्तानों को सुझाव दिया कि मूर्तिपूजक हिंदुओं पर जज़िया नहीं लगाया जाए बल्कि उन्हें इस्लाम अथवा मृत्यु के मध्य एक विकल्प चुनने की अंतिम चेतावनी दी जाए। परंतु हिंदुओं के बहुसंख्या को देखते हुए, सुल्तानों की ऐसा करने की हिम्मत नहीं हुई तथा केवल जज़िया लगाकर संतुष्ट हो गए।

काज़ी मुग़लिथुद्दीन ने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से कहा:

‘यदि जज़िया वसूली करने वाला अधिकारी किसी हिन्दू से चांदी की मांग करे तो हिन्दू को उसे पूरी विनम्रता से सोना दे देना चाहिए। यदि अधिकारी उसके मुहँ में थूकना चाहता हो तो हिन्दू को बिना किसी हिचक के अपना मुंह खोल देना चाहिए ताकि अधिकारी सरलता से उसमें थूक सके।’(5) अलाउद्दीन हिंदुओं को अंतिम सीमा तक निर्धन करने के लिए प्रसिद्ध था, परंतु यह ज्ञात नहीं है कि उसने काज़ी के सुझाव पर अमल किया अथवा नहीं।

अन्य स्थानों की भांति, भारत में भी अधिकांश गैर-मुस्लिमों ने जज़िया के भय से इस्लाम स्वीकार कर लिया। फिरोज़ शाह तुग़लक ने एक अध्यादेश निर्गमित किया जिसके तहत ब्राह्मणों समेत सभी हिंदुओं पर जज़िया थोप दिया तथा यह भी प्रावधान रखा कि यदि वे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें तो उन्हें इससे मुक्ति मिल सकती है। वह लिखता है कि इस अध्यादेश के फलस्वरूप ‘हिंदुओं के झुंड के झुंड तथा एक-एक समुदाय इस्लाम के गौरव से गौरवान्वित हो उठे। इस समय तक, वे दूर-दूर से आ रहे हैं तथा इस्लाम स्वीकार कर रहे हैं तथा जज़िया से मुक्त हो रहे हैं।’

فوج فوج و جامه ات جامه ات هند آمدند و با شرف-ی یسلم )

مشرف شدند.
و همچنین یلا یومی-نه حدها از اطراف
می آیند, و ایمان می آرند, و جزیه از ایشان دور می شود.)

( फ़ौज फ़ौज वा जमात जमात हुनुद आमदँद वा बा शर्फ़-ए-इस्लाम मुशर्रफ़ शुदँद। वा हमचुनीन इला यौमी-ना हद अज अतराफ़ मी आयँद, वा ईमान मी आरंड, वा जज़िया अज ईशान दूर मी शावद।)

ब्राह्मणों ने यह धमकी दी कि वे उपवास करके अथवा अग्निदाह करके प्राण त्याग कर देंगे क्योंकि पूर्व में उन्हें जज़िया से मुक्त रखा गया था। सुल्तान हठधर्मी था, उसने उनसे कहा कि उसे इसकी ज़रा सी भी चिंता नहीं है यदि वे सभी अग्निदाह कर लेते हैं। अततः हिंदुओं की अन्य जातियों ने उनकी ओर से जज़िया अदा करने का आश्वासन दिया तथा यह प्रकरण समाप्त हुआ। (7)

अकबर वह प्रथम शासक था जिसने अपनी कलम के एक प्रहार से जज़िया समाप्त किया; इसके साथ ही जुड़ी हुई विभिन्न विसंगतियाँ जैसे मुस्लिम तथा धिम्मी के मध्य का भेद

भी समाप्त हो गया। उसके पुत्र तथा पौत्र ने जज़िया के विषय में उसी की नीति का अनुसरण किया, यद्यपि सामान्य व्यवहार में हिंदुओं के ऊपर अन्य प्रकार के प्रतिबंध तथा बाध्यताएं लगा दीं, जो पूर्व(अकबर के पहले से) से चली आ रही थीं।

1679 औरंगज़ेब ने जज़िया को एक बार फिर लागू कर दिया, जिसकी दर पूर्व की भांति 48 दिरहम धनी पर, 24 मध्य वर्ग पर तथा 12 निर्धन पर थी। धनी वर्ग में वे लोग माने गए जिनकी वार्षिक आय 10,000 दिरहम या उससे अधिक थी, मध्य वर्ग वे लोग थे जिनकी वार्षिक आय 200 से अधिक थी तथा निर्धन वे लोग थे जिनकी आय इससे कम थी। इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए, उसने यह अनुमान लगाया नियत किया कि धिम्मी जज़िया की राशि लेकर स्वयं पैदल चल कर आए। उसे यह खड़े होकर देना चाहिए, जब जज़िया संग्राहक सामने बैठा हुआ हो। धिम्मी का हाथ संग्राहक के हाथ से नीचे होना चाहिए, इसे धिम्मी के हाथ से जज़िया छीन कर लेना चाहिए और कहना चाहिए, 'ओ धिम्मी जज़िया दो!'(8)

बादशाह ने जज़िया वापस लेने की हिंदुओं की करुणामय विनती पर कोई ध्यान नहीं दिया जो दिल्ली में लाखों की संख्या में एकत्र हुए थे। अगले दिन बादशाह ने विरोध करने वाले हिंदुओं के समूह के ऊपर हाथियों को छोड़ दिया तथा अनेक लोग इसमें कुचले गए। अगले कुछ दिनों तक वे बड़ी संख्या में एकत्र होते रहे, परंतु इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

जज़िया पुनः लागू करने के प्रतिरोध में बादशाह को संबोधित करते हुए एक लंबा विरोध-पत्र लिखा गया। इसके लेखन का श्रेय चार भिन्न लोगों को दिया जाता है। 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी मिसल 71, इसका श्रेय शिवा जी को, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल मिसल 56 इसका श्रेय शंभूजी को, ओर्मे के पत्र (Orme's Fragments): पृष्ठ:252, इसका श्रेय जसवंत सिंह को तथा कर्नल टॉड खंड-1(Annals & Antiquities of Rajasthan, volume-I), पृष्ठ:323 इसका श्रेय उदयपुर के राणा राज सिंह को देते हैं।'(9) परंतु इसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

इस पत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के बादशाह ने

भिक्षुओं के भिक्षापात्र पर भी लोलुप दृष्टि रखी, ब्राह्मण, जैन भिक्षु, योगी, सन्यासी, बैरागी, अकिंचन, भिखारी, नीच कर्मों वाले लोग तथा भूख से सताये लोगों को भी जज़िया के लिए लक्षित किया।'(10) यद्यपि औरंगज़ेब के शासन के 37 वें वर्ष में एक परवाना ज़ारी किया गया जिसमें आगरा के ईसाई पादरियों को जज़िया से मुक्त कर दिया गया।(11) जब हैदराबाद के लोग जज़िया अदा करने में असमर्थ सिद्ध हुए तो बादशाह ने एक वर्ष के लिए जज़िया से मुक्त कर दिया।(12)

जज़िया लागू करने अथवा लागू न करने के विषय में दिल्ली के निर्देशों के बावजूद, स्वतंत्र तथा अर्धस्वतंत्र शासक तथा कुछ क्षेत्रों के राज्यपाल अपनी मर्जी से कार्य करते रहे। अतएव जब अकबर ने जज़िया हटा दिया था तो भी बीजापुर में जज़िया लागू रहा। हम यह देखेंगे कि कश्मीर के सुल्तानों का इस विषय पर इतनी स्वतंत्रता थी कि अपनी इच्छानुसार नीति निर्धारण कर सकें। यह भी देखा गया कि सुल्तानों को जज़िया वसूलने में नाकों चने चबाने पड़े। उनके जज़िया संग्राहकों को प्रायः स्थानीय हिन्दू मुखिया अथवा भूपति भगा देते थे। यहाँ तक कि औरंगज़ेब को भी इस बात का दुख था कि वह जज़िया वसूलने में कठिनाई का अनुभव कर रहा है।

औरंगज़ेब आदेश के कारण हिंदुओं को एक अन्य द्वेषपूर्ण कर देना पड़ता था; यह व्यापारिक सामग्री पर लगने वाला कर था जो हिन्दू व्यापारियों को मुस्लिमों की अपेक्षा दोगुनी दर से देना पड़ता था।

औरंगज़ेब द्वारा अपने प्रशासनिक व सैन्य सेवकों को जज़िया से मुक्त रखने का यथार्थ में वह अभिप्राय नहीं था। वह हिंदुओं को सरकारी सेवाओं से दूर रखना चाहता था तथा उसे राजनैतिक अपरिहार्यताओं से विवश होकर ही छूट देनी पड़ी थी, क्योंकि अनुकूल मुस्लिम प्रतिभाएं दुर्लभ थीं। (13)

एक अन्य कारक ध्यान देने योग्य है, वह है आपात स्थिति में सेना में भर्ती, जिसके लक्ष्य पर गैर-मुस्लिमों से अधिक मुस्लिम जन थे, क्योंकि हिन्दू जज़िया देने के कारण इसके लिए बाध्य नहीं थे। कम से कम भारत में इस सिद्धांत के अनुपालन के स्थान पर उल्लंघन अधिक हुआ है। भारत जैसे विशाल साम्राज्य में, एक बड़ी सेना का रखरखाव तभी संभव था जब इसमें गैर-मुस्लिम तथा मुस्लिम दोनों की भागीदारी हो, प्रायः गैर-मुस्लिम की भागीदारी ही अधिक होती थी,

क्योंकि मुस्लिम संख्या, हिन्दू की तुलना में बहुत कम थी तथा बिखरी हुई थी।

कश्मीर में, सिकंदर बुतशिकन (1389-1413) ने हिंदुओं पर प्रथमतः जज़िया लागू कर दिया। उसके पूर्व, शाह मीर(1339) से लेकर कुतुबउद्दीन(1389) तक कश्मीर में जज़िया नहीं था। कश्मीर में जज़िया 1586 में उस समय समाप्त किया गया जब यूसुफ़ शाह चक के समय अकबर ने कश्मीर को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया; यद्यपि इसकी वसूली यूसुफ़ शाह ने इससे 7 वर्ष पूर्व से ही रोकी हुई थी, अर्थात 1578 से लेकर कश्मीर के मुग़ल साम्राज्य में अधिग्रहण के समय तक। तथापि, सिकंदर बुतशिकन तथा यूसुफ़ शाह के मध्य कश्मीर का स्वर्ण युग भी आया, जिसका शुभारंभ सुल्तान ज़ैन अल-आबिदीन(1419-1470) ने किया, जिसने जज़िया की दर घटा दी तथा अंततः इसे समाप्त कर दिया। ब्राह्मणों को जज़िया के लिए एक बार फिर दौलत चक ने लक्षित किया, जो सुल्तान इस्लाम शाह(1538-39) का प्रधान मंत्री था। इस समय तक हिंदुओं में से केवल ब्राह्मण जाति के लोग ही कश्मीर में शेष रह गए थे।

सिकंदर बुतशिकन द्वारा निर्धारित जज़िया की दर 2 पाला(लगभग 1 टोला व 2 माशा) चांदी प्रतिवर्ष थी। ज़ैन अल-आबिदीन ने प्रथमतः इसे घटा कर केवल 1 माशा(परंतु इसकी भी वसूली प्रायः नहीं की जाती थी) कर दिया। अंततः उसने इसे समाप्त ही कर दिया। परंतु दौलत शाह ने प्रति ब्राह्मण पुरुष से जज़िया के रूप में 40 पाला चांदी वसूल करनी शुरू कर दी, यह वसूली उसी समय से शुरू हो जाती थी जब ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न होता था।

जज़िया के लिए, कश्मीरी इतिहासकार जोनराजा ने 'दुर्दण्ड'(अपमानजनक दण्ड)(14) अथवा तुरुष्क-दण्ड(तुर्क अथवा मुस्लिम शासक द्वारा लगाया गया दण्ड)(15) जैसे व्यंजक प्रयुक्त किये हैं। जज़िया लगाने की प्रक्रिया के लिए उसने दण्ड-स्थिति नामक व्यंजक का प्रयोग किया है।(16)

अन्य स्थानों की भांति भारत में भी जज़िया ने इस्लाम के प्रसार में एक महती भूमिका अदा की है। अमीर खुसरो(13वीं सदी के उर्दू व फ़ारसी कवि) की यह उक्ति ठीक लगती है कि यदि हनफ़ी कानून(मुस्लिम विधिशास्त्र के

चार विधानों में से एकमात्र विधान जो यह कहता है कि बहुदेववादियों को जज़िया अदा करने के बदले जीवित रहने दिया जाए) भारत में प्रचलन में नहीं होता तो हिन्दू जड़ से खत्म हो जाते।

با-دهیمماه گر نه بودی رخصت-ی شر

نمندی نام-ی هندو زی 'سل تا فر

बा-धिम्माह गर ना बूदी रुखसत-ए-शर'
ना मंदी नाम-ए-हिन्दू ज़ी सल ता फ़ार'(17)
(Ba-dhimmah gar na budi rukhSat-i shar'
Na maNdi nam-i Hindu zi 'Sl ta far')

इसका शाब्दिक अनुवाद है : 'यदि धिम्मियों को शरियाह की छूट नहीं मिली होती तो हिंदुओं का नामोनिशान मिट जाता।'

सिकंदर बुतशिकन के समय कश्मीर की अनोखी स्थिति यह थी कि उसने हिंदुओं के ऊपर जज़िया के साथ-साथ ज़कात भी लगा दिया था। यूसुफ़ शाह चक ने केवल मल्लाहों को

ज़कात से मुक्त रखा था।(18)

हम इस अध्याय का समापन करते समय उस लोभ का संवरण नहीं कर पा रहे जहां हम यह बताना चाह रहे हैं कि आज के भारत का यदि हम लीक से हटकर आकलन करें तो यह निष्कर्ष सामने आता है कि कथित बहुसंख्यक आज भी चाहे अच्छा लगे या बुरा,जज़िया जैसा ही कर अदा कर रहे हैं, अर्थात बहुसंख्यक द्वारा अदा किये गए कर का अधिकांश केवल कथित अल्पसंख्यक के हितों में ही प्रयुक्त हो रहा है।

फ़ुटनोट

1. अली कूफी द्वारा लिखित चचनामाह, जिसका फ़ारसी से अंग्रेजी अनुवाद कालीचबेग फ्रेडुनबेग(Kalichbeg Fredunbeg) ने किया, दिल्ली में पुनःमुद्रित, 1979, पृष्ठ 165;
2. अली कूफी द्वारा लिखित चचनामाह, जिसका फ़ारसी से अंग्रेजी अनुवाद कालीचबेग फ्रेडुनबेग(Kalichbeg Fredunbeg) ने किया, दिल्ली में पुनःमुद्रित, 1979, पृष्ठ 165;

3. अली कूफी द्वारा लिखित चचनामाह, जिसका फ़ारसी से अंग्रेजी अनुवाद कालीचबेग फ्रेडुनबेग(Kalichbeg Fredunbeg) ने किया, दिल्ली में पुनःमुद्रित, 1979, पृष्ठ 165;
4. मुहम्मद कासिम फरिश्ता, 'तारीख', अब्दुल हई ख्वाजा, देवबंद द्वारा 1983 में किये गए उर्दू अनुवाद के खंड-1 का पृष्ठ-90;
5. जियाउद्दीन बर्नी द्वारा लिखित तारीख-ए-फिरोज़शाही के कुछ चुनिंदा अंशों का सैयद अतहर अब्बास रिज़वी ने: 'खिलजी-कालीन भारत' में किया गया हिन्दू अनुवाद, अलीगढ़, 1955, पृष्ठ:70;
6. फिरोज़ शाह तुग़लक की आत्मकथा फ़तूहात-ए-फिरोज़शाही, अब्दुर रशीद द्वारा संपादित, अलीगढ़, 1954, पृष्ठ: 16-17;
7. शम्स सिराज अफ़ीफ़ द्वारा लिखित 'तारीख-ए-फिरोज़शाही' जिसके अंशों का अनुवाद 'खिलजी कालीन भारत' में हुआ है, उसका पृष्ठ: 150-151;
8. मिर्ज़ा मुहम्मद हसन उर्फ अली मुहम्मद खान बहादुर द्वारा लिखित 'मिरात-ए-अहमदी' सैयद नवाब अली द्वारा संपादित, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़, संख्या:

33, बड़ौदा, 1928, खंड-1, पृष्ठ;296-297;
9. जहीरुद्दीन फ़ारुखी द्वारा रचित: 'Aurangzeb and His Times' दिल्ली में पुनर्मुद्रण, 1980, पृष्ठ:158;
10. हफीज़ मलिक द्वारा रचित, 'Moslem Nationalism in India and Pakistan', वाशिंगटन, 1963, पृष्ठ:295;
11. जहीरुद्दीन फ़ारुखी द्वारा रचित: 'Aurangzeb and His Times' दिल्ली में पुनर्मुद्रण, 1980, पृष्ठ:157;
12. जहीरुद्दीन फ़ारुखी द्वारा रचित: 'Aurangzeb and His Times' दिल्ली में पुनर्मुद्रण, 1980, पृष्ठ:154;
13. मोहम्मद यासीन द्वारा रचित: ' A Social History of Islamic India' लखनऊ, 1958, पृष्ठ: 44-49;
14. जोनराजा द्वारा लिखित राजतरंगिणी, रघुनन्दन सिंह द्वारा हिन्दू में अनूदित व संपादित, वाराणसी, विक्रमी 2028, गद्यांश: 606;
15. जोनराजा द्वारा लिखित राजतरंगिणी, रघुनन्दन सिंह

द्वारा हिन्दू में अनूदित व संपादित, वाराणसी, विक्रमी 2028, गद्यांश:606, पृष्ठ: 609;

16. जोनराजा द्वारा लिखित राजतरंगिणी, रघुनन्दन सिंह द्वारा हिन्दू में अनूदित व संपादित, वाराणसी, विक्रमी 2028, गद्यांश: 606,पृष्ठ: 653;

17. अमीर खुसरो द्वारा लिखित 'मथनवीय-ए-दवाल रानी खिदिर खान'(इसे 'आशिकाह', 'इश्क़ियाह', साहियाह-ए-इश्क़' के नाम से भी जाना जाता है), रशीद अहमद अंसारी द्वारा संपादित, अलीगढ़, 1917, पृष्ठ: 46;

18. जोनराजा द्वारा लिखित राजतरंगिणी, रघुनन्दन सिंह द्वारा हिन्दू में अनूदित व संपादित, वाराणसी, विक्रमी 2028, गद्यांश: 818,पृष्ठ: 462;